

ओ३म्

* लहरी वाडवानलः *

रहस्यलहर्य्याः खण्डनात्मकः

सच

आधुनिकावैदिकवामकौलादिमततमस्तिर-
स्करणसमुद्यत्सहस्रभानुभानुविभवानां
श्रीस्वामिविश्वेश्वराश्रमाणांनिदेशेन
जम्बूनिवासिभिर्मुद्रापितः ॥



जम्बू

रणवीर प्रकाश यन्त्रालय में दीवान आलिमचन्द जी. सी.
के अधिकार से छपा ।

सं० १९७४ । ३०० कापी ।

6056

Price Rs. 0-4-0 –

श्रीगजवदनाय नमः श्रीगुरुभ्यो न
मः ॥ अथ लहरीवडवानलस्तुति
का प्रस्तूयते, यद्व्रतं सकले
शमुखपूतमासीन्मायान्वयोऽवि
चलनाकरि भक्तितथ्यः काले
नयेन परिवृत्तिमवापितत्का
लन्तमेव कुटिलस्वगतोऽस्मि
पूर्वम् ॥१॥ वात्स्यायनादिमुनि
वर्य्यनिषिद्धमूलं ज्ञानं प्रक
ल्पितं सुकृतान्यवलोम
दुस्तर्कतीक्ष्णविषमानलधू
म्यमानां शीतैः सुतर्कसलिलैः
परिलम्पयामि ॥२॥ परिव्रजन्तं
परित्यक्तसर्वं ज्ञानायबालैः
परिधानपूर्वम्, अधर्मसक्त
लमयं सुधर्मं निरीक्ष्य देवोऽ
वतताराद्भुमिम् ॥३॥ = ❀ = ॥

तदीयवासः परिहृत्य तस्मात्सु
नः स्वयन्तत्परिधाय यत्नम्॥ स
धर्मशत्रुं परिहन्तुकामो दधा
रश्रीशङ्करनामधेयम्॥४॥ य
दीयदुर्धर्षसुतर्कपङ्क्तिभिर्ग
तेऽपि नाशं विमताख्यशाखिनि
कुतर्कबीजैर्हि पुनस्तदङ्कुरः
स्वकीययुक्त्यग्निरसेन धक्ष्य
ते॥५॥ उपासनासात्विकबुद्धि
पोषकैर्व्यधायि द्व्यैर्मुनिभिः
पुरातनैः। अकारणं मांससुरा
दिवस्तुभिर्विधीयते शिष्टवि
रुद्धमानवैः॥६॥ वन्यैः पुष्पफ
लैः सपात्सुसलिलैर्विभक्तिः
कायं मुदा पूर्वैस्तादृशपुष्पप
त्रसलिलैर्देवा उपास्यन्त वै,

वाचस्पत्येकोशे पशुरपिनामसु
पठितः। पं०१२

मद्यं मांसमथ व्यवायमधुना धर्म्यं बुबुद्धिर्मुधा देवोपासनतां यहो खलजनैस्तैरेव निर्दिश्यते ॥७॥ कुधर्म्मशास्त्रोपरिरोपितोऽयं कुतर्कवापी सलिले ऽवसिक्तः। नभारतं स्वीयफलैः प्रलोभ्य नयेत्कुमार्गम्परिभिद्यतेऽतः ॥८॥ विहाय धर्म्मं प्रतिषिध्य शुद्धिं पीत्वा सुरां संहृततत्त्वबुद्धिम्। अरे विमुक्तिर्यदि लभ्यमहो कृतस्तदा कुत्सितकृत्यगर्हा ॥९॥ स्थिरतासमनिशुद्धवीरनृपतेः सुनोरुदारात्मनः। निःशेषशास्त्रेन तत्परस्य विदुषः श्रीनारसिंहस्य वै प्रत्याख्यानुमदः कृतस्य समितः कस्यापि विश्वेश्वरः श्रीमच्छ्री

गुरुभक्तिलब्धविभवो धत्ते मृ
त्युञ्जयम् ॥१०॥ भूमिकाच्छ
लश्यामिलहरी वाडवानले
यह लोचनमात्रे पावामे नरम
ले मनः ॥११॥ अथैकदाति पवि
त्रतमाया मुक्षोरुकी प्रवाहायं
विमुक्तरभुवंशीयराजन्याधि
ष्ठितायां जम्बूनगर्यां विदेहे
सर्वैरपि विशिष्ट जना
हि लवा मलोलादि भागे मनुसर
भतएववेतनाधिक्यमुपलभमा
नस्तैनैव च प्रथितस्सम धिग
तः। तत्रैव वैद्यवीसम्पत्सना
थीकृतकलेवरो यतिवरो विश्वे
श्वराश्रमेति सुगृहीताभिधः प्रा
दोभूत् स च तपश्चर्याधर्मानुसन्धा
नलम्बुक्षमाणानां विज्ञावक

स्य यतिवरस्य अनगारं पर्य्ये
त्थकर्णयोरातिथ्यमुपागमत्
अथ जम्बूस्वामिनः क्षत्रिया
वेश्याऽस्य यतिवरदर्शनार्थं विह
ह्रौ स्थितुरवानुभवार्थञ्चतत्स
मीपमुपाजग्मतुः समेत्य चग्रा
मंगच्छंस्तत्पं स्पृशन्निति त्या
येन वामतन्त्र प्रश्न व्याजेन तदी
य मतं मतिं च परीक्षां कारया मा
सुः। जम्बूपत्तनवासस्थजनानां
यतिवरं प्रावोचन् भो स्वामिन्
केन चिद्वाममार्गे सकल शिष्ट
जनगर्हितं प्रविष्टेनैकं पुस्तकं
मासं प्रणीतं न मधीत्यास्मत्स
न्ततिरपि स्यन्देवो हि पक्षा
जेन पाययति मांसञ्चाशयति
किं कुर्मो वयमिति कर्त्तव्यता

मूल: । अहो अत्र हि प्रपञ्चप्रसि
द्धैदुष्प्रावकः वालिनो महाचा
र्यो दाक्षिणात्यमैथिलाख्या
समदेशीया ख्यातपूर्वपाण्डि
त्या गीर्वाणगुरुणाऽपि ग्राह्या
र्थेन यशोऽनुमितिमिच्छलोऽ
मूलत्वेमेयो वादाहवेषु वादीभ
मेन्द्रविमर्दिकलाश्रासनधैर्य
संराजधानी भोजराजस्य धारे
व पुरुषे: ह्य कालस्य कुटिला
गतिर्येन ग्रन्थे गुणिजनमण्ड
लं सकलम्; सम्प्रति भवन्तः
शरणमशरणानामस्माकमन
स्य ग्रन्थस्य खण्डनमात्रेणोप
कृतिं कुर्वन्तु भगवन्तः । नायमे
न वादाहवः श्रीमतां वालेव वि
डुम्बा मन्मुखे नैव मन्तव्यमिति ना

वैनाभिना१
मनभिहैतंमशहेक्षेणैव शाक्षि
णामस्मींकं मनो मुदमाजनि
षति, अथमतिवैरियेषा
मर्थनं श्रीचकार तनाहं
च, अयंमनाइषकतिपय प्र
धानविडम्बना निराकरणा
योद्यमो मा भूत्नामगर्हणा
विषयः। यत्नं हुद्धेवादिनि
वालानां व्यामोह निराकरणा
यैव प्रवृत्तो न त्वस्मिन् तच्छ
स्त्रमहिमानं तदीय प्रतारणा
पुस्तकेवा नारिमाणमाल
क्ष्य, नहि पञ्चास्योमशके
शशके ताऽडम्बरमवलतार
नयम्प्रवर्त्तते, पर न्त्वस्थि
निसर्गोऽयं वैश्यवनसंसह
ते विपक्षमात्रमर्धमेला

पञ्चीकृतांसतंचैव सहजत्व
भावोयदि मैडन भिलक्षितवा
दि गरिमा कोपि लोके कुपथम
नुसरति स हसा तन्निखिलमु
शतीत्यस्मान्नेवादानर्हें ऽ
तएव विदुषामुपक्षा है प्र
पेक्षा बुद्धिमान हं हन्त
मस्मामिति शम् ❀ ❀
इति श्रीमत्स्वरमहंस परि
व्राजकाचार्य श्री महादेवा
श्रम पूज्यपाद शिष्य श्री वि
श्वेश्वराश्रम मुनि प्रणीते
लहरी वादनले भूमिका
समाप्ता

सम्वत १९१४
ज्येष्ठ सुदि २

श्रीगणपतयेनमः अथभाषाभूमिका ॥ विदित हो कि आजकल के समय मे खलहि मद्यमांसादि मे लोगों की प्रवृत्ति है अगर फिर थोडासा पढे हुवे पुरुष शास्त्रसे सिद्ध करें तो कैसा अनर्थ होगा सो अवदेखें कि ब्राह्मण जाति के लीये कहिं भी देवता को मद्यादि देना नहि लिखा है ,, देखो देवीरहस्य मे लिखा है ,, वलिमांसादि पूजेयं विप्रवर्ज्या मयेरिता तेषां किल सुरा मांसे नौक्ता पूजा नृप क्वचित ,, अर्थ हे राजन् जो हमने वलि मांस आदि पूजा कहि है सो यह ब्राह्मण को छोड कर कहि है ब्राह्मणों को मद्य मांसों से पूजन कहिं भी नहि है,

और श्रीक्रमतन्त्र मे लिखाहै ॥
नदद्याद्ब्राह्मणो मद्यं महादेव्यै क
थंचन वामकामो ब्राह्मणोपिमद्यं मांसं नभक्षयेत ॥ अर्थ, ब्रा
ह्मण महादेवी के लीये मद्य कुं कोसी भी सूरत न देवे, ब्राह्मण चाहे
वाम की भी इच्छा करे परंतु मद्यमांसन खावे, और देखो नीलतन्त्रप
टल ७ मे लिखा है ॥ यत्रासवमवश्यन्तु ब्राह्मणस्य विशेषतस्तत्र
गुडार्द्रकं दद्यात् क्रं वा गुड मिश्रितं,
अर्थ, यहां आसव मद्य की जरूरत भी हो वहां ब्राह्मण जो है विशेष
से गुड और अद्रक देवें अथवा मठा मे गुड मिला कर देवे, और का
लिका पुराण मे लिखा है ॥ ब्राह्मणस्य सुरां दत्वा ब्राह्मण्यादेवहि

यते ॥ अर्थ, ब्राह्मण जो कर दे
वता को मद्य देवे तो फिर ब्राह्म
ण नहि रहेगा ब्राह्मणत्व जाति
सें खारिज हो जायेगा, और भी लि
खा है ॥ विप्रः क्षीरेण भुजस्तदि
तरे क्षौद्रं ज्यमद्यासवैरिति,
अर्थ, ब्राह्मण दुग्ध सें देवताकुं
पूजे क्षत्रिय घृत से वैश्य मदी
रसें शूद्र आसव से पूजा करे,
सो इस सें लेके और भी शत प्रमाण
माण हैं कि जो देवता के अर्थ ब्रा
ह्मण को मद्य आदि देने का निषे
धकरते हैं और सत राग प्राप्त
का निषेध तो धर्म शास्त्रों में है हि
उसके लिखने की जरूरत नही न
हि है, और तन्त्र ग्रन्थों में यहां है
भी वहां ब्राह्मण को निषेध सा

यही किया है, और देखो भरत
न्नवासियोंका मुख्य ग्रन्थ है उस
मे स्त्रियें लिखी हैं ॥ चाण्डाली
चर्म्मकारी च मातङ्गी पुल्कसी
तथा श्वपची खनकी चैव कै
वर्त्ती विश्वयोनिका ॥ ३२४ ॥ कु
लाष्टक मिदं प्रोक्त मकुलाष्टक
मुच्यते कुड्की सौत्रिकी चैव पा
त्रजी वातुरंजकी ॥ ३२५ ॥ गाय
की रजकी शिल्पी कौशिकी च त
थाष्टमी स्त्रियो मन्त्र समायुक्ताः
सम्यगाचार पालिकः ॥ ३२६ ॥
अर्थ, भंगन चमारी मातङ्गी
की पुल्कस और मतङ्ग वन मे रह
ने वाले चांडाल है कुत्ता मार कर
पका के खाने वाले की स्त्री विश्वयोनि
ये की स्त्री मल्लानी मल्लरी कुडकी

सौत्रिकी जुलाही, शरारी, ली
लारन, मरासन, धोविन, तर
खानी कमगरिनवा, कौशिकी
रेशम के कीड़े पालने वाले की
यह सोलह स्त्री को मन्त्रोपदेश
देकर शुद्ध करना कहे हैं और
शाक्त प्रमोद मे लिखा है॥ वेश्या
लतागृहे गत्वा तस्याश्चुम्बनं तत्प
रः। तस्या योनौ मुखं दत्त्वा तद्रसं
विलिहन् जपेत्। ५८। अर्थ, वे
श्या के बगीचे मे साधक जा के
उसको चूमे फिर अपना मुख
उसकी भग मे देकर उस भग के
रस को चाट ता हुवा जप करे,
इसें पूर्व यह है, कि, कादम्बरी
सिन्धुमध्ये सुरा रिष्टैश्च साहवैः
योनि क्षालित तोयैश्च योनिलि

ऋामृतैरपि।५५। स्वजातकुस
मैः पूर्ज्यां जपान्तेतर्पयेच्छि
वाम् सर्वसाम्राज्यनामानुत्त
त्वानत्वा स्वशक्तितः।५६। अ
र्थ, सिंधु कादंबरी आदि मद्यों
सें तर्पण करे और स्त्री की योनि
याने भग धोकर उस जल सें त
र्पण करे और योनि और लिं
ग इन दोनों का अमृत क्या है
रज और वीर्य्य इन दोनों सें त
र्पण करे और शेष भक्षण तो
वाममार्ग का धर्म्म ही है, इस
सें आदि ले के और भी विषये
हमने ग्रन्थ मे दिखलाये हैं,
और विस्तार सें इसके ग्रन्थ
का खण्डन है और हमने कु
छ अपनी तर्फ सें नहि किया

क का तथा शास्त्र विरोध हि दिखाये हैं अगर हम यदि कोटि करते तो आम लोग समझेंगे कैसे अगर इसमें कोई हक है कि स्वामी जी अत्युक्ति करते हैं तो एक पण्डित वा शास्त्री और एक काशी सें मंगाकर निश्चय करें वोह दिखला देंगे कि शास्त्र की तर्फ बिना पड़े कैसें झांकना होता है अगर विद्यार्थी कोई आजाय तो वह कहां पड़े इसलीये एक बड़ा पण्डित जरूर रहे डोगरा ब्रह्मसभा को चाहिये कि जो इ बुद्धिच पुरुष ऐसे ऐसे ग्रन्थ भ्रष्टमार्गों के प्रकाश करते हैं उन ग्रन्थों को काशी सें सही मं

गाकर मन्जूर किया करें और सभा को चाहिये जबरन हुक्म से ऐसे ग्रंथ को बंद करें न हि तो इस देश की बडी हानि है और अखबारों में भी यह बात निकल चुकी है, अगर हमने एक बार यह अंडबंड साले ख खण्डन कीया है फिर भी यदि इसके उपर ऐसा लिखे तो विना विद्वानों के प्रमाण पत्र के लेख अंडबंड समझा जायगा और हमभर आयु अंड बंड खण्डन नहि करेंगे, इसलीये ब्रह्मसभा काशीजी के विद्वानों से मत लिमं गावे फिर चाहे प्रक्षिक राबे चाहे बन्द कराबे और हमने अपनी तर्फ से कीया ही है इत्यलम्

(की ४)

एकपुस्तक इन्हे संन्यासाश्रम खण्डन का छपी है जिसमे संन्या सीओं को पलम शब्दों से पुकारा है एक ही आश्रम गृहस्थमाना है उसका खण्डन निन्दा प्रधान है इसलीये पीछे कहाजायगा कूं कि कहदेना बहुत सुगम है उस का समझना अच्छे पुरुषों को कठि न होता है अब उसका सिद्धकर ना कितने वेद वेदांग पुराण इति हास धर्मशास्त्रों की अवस्थायों सें होगा बड़ाभारीपुस्तकबने गा धन कितना चाहिये क्यूं कि वर्णाश्रमों को वेद शास्त्र पु राण इतिहास धर्मशास्त्र आदि सें कहा हुवा होने सें, और जो ये कहते हैं संन्यासियों ने कर्म छो

दिये तो पूछें कौनसे यदि कहें य
ज्ञ आदि तो वह लोग गृहस्थों के भी
कौड़ देवे हैं आहिताग्नि है ही कोई
नहि, और जब योग उपासना दि
निष्काम कर्म नित्य दिन संन्या
सी भी करते हैं और दो कांड वेद के
यथा संभव संन्यासी अनुष्ठित
करते ही हैं तीसरे कर्मकांड का भी
भार इन्हीं के शिर धर आप रखाली
हुवा चाहते हैं हां उपासना मद्य
मांस सेंनहि करते शायद इसी सेंन
रैवास हो तो हो इसलीये संन्या
सीयों अग्निसाध्य कर्म त्यागे क
हना गृहस्थनें नहि त्यागे कह
ना निरर्गल है और रहा यज्ञोप
वीत सो जब त्रैवर्णिकों का जन्म
होता है तो साथ वह नहि होता

है किन्तु अस्य वर्ष पर वेद वाक्य
सें कंधे उपर रखा जाता है उससें
त्रैवर्णिक संस्कृत होते हैं तो सोभी
संन्यासीयों का संस्कार होता ही
है उसका त्याग भी वेद वाक्य सेंही
है और ज्ञान निष्ठा जब तक परि
पक्क नहि तब तक अति त्याग भी
नहि किन्तु स्कन्ध उपर न हि द
ण्ड के साथ ब्रह्म मुद्रा में है और द
ण्ड में त्रयोदश १३ यज्ञोपवीत है
छः ६ की मेखला भी होती है औ
र एक दण्ड भी संस्कारों में हैं यज्ञो
पवीत कपास का धागा होता है
दण्ड पलाश और वंश के काष्ठ
का होता है वेद में एक मन्त्र यज्ञो
पवीत का है एक ही ब्रह्म दण्ड का
मंत्र है सो संन्यासी के पास दोनों

है यह सबके पास एक है तो फि
र तुम यज्ञोपवीत ही न कहते हैं तो
लज्जा शर्म उठाती ॰ रही शिखा उ
सका त्याग तो हो ही नहिं सकता
क्यूं की तुम अपनी शिखा उखड़ा
के देखो दूसरे दिन नहीं है जावे
गी दूसरे जिसका हस्थ का शिर
गंजा होवे वह आपकी दृष्टि सें
पतित हो कर नरक मे जा गिरे गा
दूसरे शिखा त्याग यदि पाप का वि
हितना हो तो भारत खण्ड के बड़े
बड़े बिद्वान यज्ञ होमादि करने
वाले सन्यास करते क्यूं त्यागते
हैं उसमें शिखा यज्ञोपवीत का अभ
को क्या भाव है जबकी कंथादं
ड कमंडल का भार उठाते ही हैं
आपने मण्डुन मिश्र बड़े कर्मठ

उनकी तर्कें आचार्य को दी हुई
तो लिखि तो यह नहि ख्याल की
या की १८ मे दिन स्वयंभी शि
खा यज्ञोपवीत छोड़कर कंथाधा
री होगये थे जिनके बराबर कर्म
का मंडन करनेवाला न हिंदुस्
तानपुरी छोड़ सारे भारत वर्ष मे
भी नहि भया है जो स्वयं ब्रह्मा
का अवतार थे आपने संन्यासि
यों को कर्म त्यागसें नरक पातक
हा जिस कर्म को आज गृहस्थ
भी त्याग चुके हैं सो भला मंद क
र्म के करे विना विहित के त्याग मा
त्र सें नरक कैसे होगा जे कर क
हैं विहित त्यागसें पाप होगा उस
पापसें नरक होगा तो भला अ
भावसें भाव जो पाप सो कैसें

होगा जेकर इतने अपयोगादि
होते भी संन्यासी नरक वास करें
गे ऐसा ही निर्भर आपका, तो इ
तने क्रोड नहस्य और बावन ल
क्ष साधु मे दण्डी कुल भारत की
मर्दमसमारी मे तीन सौ ३००)
के लगभग है उनमे भी दो सौ
आसन्न मृत्यु होगा जहाँ इत
ना ग्रहस्थ इतना साधु नरक
मे जायेगा उतने मे सौ १००) दंडी
संन्यासी को नरक मे भी रहने
नहि देंगे वहां तो बेचारे तुमारे
से भिक्षा भी नहि मांगेगे बैठने
तो देगें क्या नहि २ नहि २ क्यूं
तुमारे वास्ते जर खरीद थोड़े हैं
बेचारे सौ १००) दण्डी को भी जगा
ह नहि मिलेगी अन्य तुम ही

रहि ये रंडी भारत मैं ही आजा
थे मे, इन्होनें गालिद के थोडा
रहना है, आप जौ लिखते हैं
यह आश्रम परधन परस्त्री हर
णके लीये है भला अपना धन
स्त्री छोडकर तो संन्यास करते
हैं तो फिर परधन परस्त्री हर
ण क्यूं चाहता होगे और यह
सुवर्ण रजत को छुहते ही न
हि फिर स्त्री वेवकूफ है जो इ
तने कौटिंग हस्य चटकीले रं
गीलों छोडकर भीख मांगनेवा
ले के पीछे लगेंगी वृढे के ध
न्य है आपकी बुद्धि, ऐसी
बुद्धि के ही प्रभाव पर वेदशा
स्त्र पुराण इतिहास धर्मशास्त्र
आदि मे ऋषि मुनि संमत

चार वर्ण और चार आश्रम
जिसमें आप लिखते हैं एक
गृहस्थ ही है और नहि, औ
र कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा ल
त्र की सी और विषय के हैं वह
संन्यास खण्डन में श्रुतिओं के अ
र्थ का अनर्थ कर अन्धाधुन्ध
मचा दीया अच्छा पहिले रह
स्य लहरी का खण्डन होगा प
श्चात् इसका मण्डन होगा, अ
पने घर में सब खण्डन करते हैं
कोई और माने तो जाने और का
शी के विद्वानों को तो लिखते हैं
वो हद के परे ईसा होना मन्जू
र करते हैं उन को आप विद्वान्
मानते हैं हम नहि कुछ सम
झते हैं हम उन्हें सब मण्डन कर
सकते हैं फिर क्या हो:

ओ३म्

लहरीबाड़वानलः

श्रीगणेशायनमः ॥ वन्दे गौरीसुतं देवं निरञ्जनमहोमहः सकलाभीष्टसिद्ध्यर्थमर्चितञ्चसुरासुरैः ।१। श्रीमत्कैलासचंद्राख्यान् भट्टाचार्य्यशिरोमणीन् नत्वाप्रस्तूयतेग्रन्थो लहरीबाड़वानलः ।२। प्रणम्यश्रीमहादेवं गुरुंशंकररूपिणम् पुन्दोषरहितेवेदे कृताधिकपरिश्रमम् ।३। अथकेचिद्वामार्गे सिद्धिसत्वात्सचसेव्य इत्याहुस्तन्न प्रसिद्धमेवैतदिच्छायां काचिच्छक्तिरस्ति यथाऽयस्कान्तमणौजड़ेपि लोहाकर्षणरूपासाच्चचिद्रूपस्यात्मन इच्छानानाविधेषुपदार्थेषूपसीणाशक्तिः ॥ तामिच्छामनेकपदार्थेभ्यो निवर्त्यैकं

त्रलक्ष्ये कुर्वतो वर्द्धते च तस्यां शक्तिः।
अतएव श्रुतिष्वात्मदर्शीभवनं विहित
म्। नेहनानास्ति किञ्चन, एकमेवा
द्वितीयंब्रह्मेति, ; पातञ्जलेचो
क्तम्, योगश्चित्तवृत्तिनिरोध इति सूत्रे
निरोधोपायमपि योगविदोवदन्ति,
यथातत्रैव, यथाभिमतध्यानाद्वा
इति सूत्रे, ततश्चेच्छायामतिशयो
जायते, तेनयद्यदिच्छति तत्तदेव
संपद्यते, तस्मान्नसिद्धिःप्रामाण्यप्र
योजिका, यथामिस्मिरेजमग्रन्थेषू
क्तस्यैकत्रकृष्णाविन्दावि च्छा निरोधे
नेच्छाशक्तिवर्द्धनस्य नानाविधाश्च
र्य्यजनककार्य्यस्य नहि धर्मेप्रामा
ण्यम्, नहितत्र मन्त्रादिनासिद्धिः।
किन्त्विच्छानिरोधमात्रादेव, अतएव
चाण्डालादिष्वपिपापिषु सिद्धिसत्वा

प्रसिद्धिर्धर्म्मप्रामाण्यप्रयोजिका तद्वत्रवाममार्गेकाचेच्छाशक्तिरस्तिकिन्त्विच्छायामेवसेति व्यर्थमेवकुम्भीपाकनरकपातजनकं वामादिनिषिद्धमार्गेणेच्छाशक्तिसंपादनम्, अतः श्रुतिस्मृतिविहितमार्गेणेच्छाशक्तिः संपादनीया सैवधर्म्मजनिका, नतुश्रुतिस्मृतिविरुद्धमार्गेणेच्छाशक्तिधर्म्मजनिका (चोदनालक्षणोऽर्थोधर्म्मः) इतिजैमिनिसूत्रेऽपिवेदप्रतिपाद्यप्रयोजनवदर्थोधर्म्मइतिलक्षणलाभात्, तस्माच्छ्रयवनचाण्डालादिप्रणीत ग्रन्थेष्वपिसिद्धेरविशेषात्प्रसिद्धिर्ग्रन्थप्रामाण्यप्रयोजिका, नवातद्ग्रन्थप्रतिपाद्यकर्म्मणां धर्म्मजनकत्वमिति प्रत्युतमद्यमांसादिविधायकत्वाद्दुर्गतिप्र

योजकत्वमेव अतएवयस्सिणी
साधनादीनिशिष्टैर्नगृहीतानितद्ध
दूामतन्त्रादीन्यपिनशिष्टैर्गृहीता
नि वेश्यायोनिक्षालिततोयतर्पणा
दि विधायकत्वात् अतएवास्य
खण्डनमारभ्यते ॥ अथवाममार्गी
यतन्त्रग्रन्थेषु स्मृतित्वं व्यवस्थापयितुं य
तद्भिन्नयथां प्रसाते तेन विधे यत्वेक्षा
दनाय प्रथमतस्स्मृति प्रामाण्यं वि
षयमुत्थापयति ॥ अवश्यंहितवैति
यतुतर्व वेष्टनस्य पशु बन्धनस्यान
वेष्टन श्रुतिविरुद्धस्ये युक्तमृतन्त्र यू
पेपशुम्बध्नीयादिति विधिविहितब
न्धनस्यवेष्टनेसत्यपि रज्ज्वादिनाव
स्त्रोपर्य्यपिबन्धनसम्भवात्तद्विरोध
प्रदर्शनस्यायुक्तत्वात् ॥ किन्त्वौदु
म्बरीं स्पृष्टोद्गायतीतिस्पार्शनिश्रुति

विरोधः प्रदर्शनीयः सर्वविरुद्धनेसति
स्पर्शसंभवादप्रमाणमितिभाष्यम्
तत्रैवं विचारितम् (अष्टकाः कर्त्तव्या
इत्यादीनि मन्वादीनांस्मरणानिस्व
मूलभूतां श्रुतिमनुमापयन्तिवैदैक
प्रमाणकेषुसर्वज्ञेषुतेषुभ्रमादिप्रलम्भ
कत्वादिदोषादर्शनात् इत्थन्नेचक्र
निच्छाकारणान्तरेपि (प्रयाजाःकर्त्त
व्या) इत्यादिस्मृतिमूलभूताःश्रुत
यः) तत्सामान्यात्सर्वमपिस्मरण
न्दृष्टमूलकमेव (अतिरात्रेषोडशि
नं गृह्णातिनातिरात्रेषोडशिनंगृह्णा
ति) इत्येकत्रानुपसंहरणी यस्या
प्यर्थद्वयस्य वेदे दर्शनात्सर्व वेष्टन
स्मृतिमूलभूतश्रुतेरत्यन्ताभावस्या
स्मदादिभि रल्पज्ञजनैर्निश्चेतुमश
क्यत्वात् तत्सामान्यादितरेषु तथा

त्वमिति चेन्न एकस्याः स्मृतेरप्रामाण्ये सर्वासामप्रतिपत्त्यापत्तेश्च नासामप्रामाण्यम् किन्तु यावन्मूलदर्शनं नास्ति तावदर्थानुष्ठानं न कर्त्तव्यमित्येवं परं (विरोधे त्वनपेक्षं स्यादसति ह्यनुमानम्) इति सूत्रम् (हेतुदर्शनाच्च) इति सूत्रे वैसर्जनहोमीयं वासोऽध्वर्युः परिगृह्णातीति स्मृतेः श्रुतिविरोधित्वेऽपि लोभमूलकत्वस्यैव हेतोर्दर्शनादप्रामाण्यमिति भाष्यम् स्मृतित्वाविशेषात् अन्यासां स्मृतेरप्यप्रामाण्यं प्रसक्तम् तेषु प्रत्यक्षेण वेदविरोधदर्शनान्न तस्या वेदमूलकत्वं कल्पयितुं शक्यमिति वार्त्तिकम् तस्मात्प्रत्यक्षवचनस्यानपेक्षणात् श्रुतिविरुद्ध

स्येति कथनमत्यन्तमनन्वितम्
अपितु स्पार्शनश्रुतिविरुद्धत्वे
वक्तव्यम् पृ०१पं०१३ तस्य बन्ध
नस्थानावच्छेदेन सर्वावेष्टयि
तव्येति तदर्थकरणे तु विरोधा
भावेन प्रामाण्यमभ्यनुज्ञातमि
त्युक्तम् ॥ तत्तु विनायकं प्रकुर्वा
णो रचयामास वानरमित्याभा
णकमनुसरति, बन्धनस्थाना
तिरिक्तस्थानावच्छेदेन सर्वावे
ष्टयितव्येत्यर्थकरणे तु भवेद
पि विरोधकारणम्, तदर्थे तु प्र
श्रुतविरोधपरत्वस्यापितः अ
हो कीदृशोऽयं विभ्रान्तः । ननु
बौद्धतन्त्रे माहिंस्यात्सर्वाभूता
नीत्यस्माद्वेदवाक्यादविरुद्ध
स्याहिंसाधर्मस्याहिंसापरमो

धर्म्म इतिनाक्यविहितत्वात्तस्यापि प्रमाणं स्यादितिचेन्न वेदप्रतिपाद्यस्यैवाहिंसादेर्धर्म्मत्वात् नबौद्धविहितस्यधर्म्मत्वं (चोदनालक्षणोर्थोधर्म्मः) इतिजैमिनिसूत्रात् ।
चोदनाहिधर्म्मेप्रमाणंचोदनाच वेदैकदेशोविधिभागः मन्त्रस्तारितकर्म्मवत्कञवत्तमपितस्यैव नतुबौद्धविहितस्याहिंसादे रिति यथागंगोदकं श्वदृतिस्थञ्चाण्डालाहृतमपेयम्, यथावाविप्रचुतान्नमग्राह्यन्तद्वद्बौद्धविहितमहिंसादित्याज्यम्, तस्माच्छाक्यग्रन्थस्थवाक्यान्नोपादेयोधर्म्म इत्याह वार्त्तिकेभट्टपादः। ननुवामतन्त्रदूषणप्रकरणे किंशाक्यादिग्रन्थदूषणेनेतिचेन्न, ग्रन्थकर्त्री

ग्रेवौद्धमतस्यापिस्थापितत्वात् ननु
वामतन्त्रेसौत्रामरायांसुरापिवेदिति
वेदवाक्याविरुद्धस्यमद्यस्यविधाय
कत्वात्तदपि प्रमाणंस्यादितिचेन्न
सुरापदस्य तत्रसोमवल्लिरसपरत्वा
त् सुष्ठुरमन्तेदेवाअनयेतिव्युत्प
त्या अतएवपूर्वदशापवित्रेणग्रहं
सम्मार्ष्टि। इतिग्रहनामकषोडश
पात्रेषुस्थापितस्यसोमवल्लीरसस्य
वस्त्रदशायासम्मार्जनंविहितम्।
अतः किंविजानीमः सुरापदंयोग
वृत्या सोमवल्लीरसम्बोधयति, न
रूढिवृत्त्यामद्यपरमिति, किंचरा
ज्ञापेयानब्राह्मणेन, किंचपानम
पिब्राह्मणेनैव, कुत्रचिद्विहितञ्च
दानंनतद्ब्राह्मणकर्त्तृकंब्राह्मण
स्यतु सर्वथैवनिषेधः। तथोक्तम्

कालिकापुराणे, ब्राह्मणश्चसुरां दत्त्वा ब्राह्मण्यादेवहीयते अतए वनीलतन्त्रे सप्तमपटले यत्रासव मवश्यन्तु ब्राह्मणश्चविशेषतः तत्रगुडार्द्रकन्दघात्तकं वागुडमिश्रित म्।१। मधुना पायसंचैवक्षीरं साज्यं चशार्करम् वलिंदद्याच्चतारायै आसवंच प्रशस्यते।२। यदि ब्राह्म णस्यविधिश्चेत्तत्प्रति निषिधविधा नं व्यर्थस्यात्, किंच ब्राह्मणश्चवि शेषत इति विशेषपदस्वारस्यात्क्ष त्रियस्यापि प्रतिनिधिकरणं विधी यत इतिज्ञायते एतच्चाग्रे विस्त रात्स्फुटीभविष्यतीत्युपरम्यते पृ०२ पं०६ वेदसाक्षाच्चतुस्यार्थ स्येति अत्र वेदेसाक्षाच्चतुस्या र्थस्येत्येवमुक्ते पुनः आवणप्रत्य

स्यविषयशब्दजनितार्थवोधस्यस्म
रणमित्यसङ्गतंप्रयुक्तं कीदृशोऽयं
विस्मरणशीलोयस्त्वोक्तवाक्यस्या
र्थं नावधारयति का पुनः प्रत्याण
परोक्ताभिप्रायज्ञाने वेदश्रुतस्या
र्थस्यस्मरणंस्मृतिरितिघटतेऽर्थ
वोधस्यस्मरणंस्मृतिरितिविरुद्ध
मेवअर्थस्यवोधस्तुस्मृतिरूपस्त
थान्च स्मरणस्यस्मरणंस्मृतिरि
त्यर्थः स्यात्सचासंगतएवेति, किं
चवेदस्तुस्वयं शब्दस्सोपिवर्णा
त्मकः सकिंपुरुषवद्वर्णानुच्चारय
तियेनश्रावणप्रत्यक्षविषयेतिव
दसि पृ० २ पं० ८ स्वमूलभूतार्थे
ति, अत्रापिस्वार्थवोधकमूलवेदा
नुमानद्वारेतिपाठः स्वमूल भूतार्थ
वोधक वेदानुमानद्वारेतिवा पाठः

शोभते पृ० २ पं० १४ इत्यादिनामन्वा
दौस्मृतावपीति अत्रमनुआदौस्मृ
तौऽपि इतिपदच्छेदे मनुरादिषु
ऋषेस्मृतिपदव्यवहारः प्रतीयतेऽ
तोमन्वादि स्मृतावपीतिपाठः सा
धुः पृ० २ पं० १७ इतिकेचिदिति॥
अत्राकृतधि त्वकुधित्वादयोधर्म्मो
केप्वापाद्याः स्मृतिशब्दार्थः प्राङ्
निर्णीतव्यइत्यारभ्य इतिकेचिदि
त्यन्तन्तुधर्म्मशास्त्रपुराणतन्त्रादि
षुस्मृतित्वव्यवस्थापने नतेषुस्मृति
व्यवहारकर्त्तार एवोपदिष्टा नहि
तत्रान्येनास्तिकादयः पूर्वप्रदर्शि
ताः येनकुधित्वादयोधर्म्मास्तेष्वेवा
पाद्यास्युः किवामनुयाज्ञवल्क्यादय
एवकुधिय इतिवदासे अहोले
खनशैली स्खलत्वापादनमपि

स्मृतित्वव्यवस्थापनविषय एव स्वीक्रि
यते पृ० ३ पं० १ वेदार्थस्मरणत्वस्य
पुराणतन्त्रधर्मशास्त्रदर्शनसाधा
रण्यात् अत्र तन्त्रपदं वाभवु
ड्डयवनादि तन्त्रग्रन्थातिरिक्तपरम्
वाममार्गीयग्रन्थेष्वग्रे स्मृतित्वखण्ड
नात् पृ० ३ पं० ७ म्लेच्छानांभवाद्द
शानामित्यत्र म्लेच्छत्वापादनमपि
धर्मशास्त्रेषु स्मृतित्वस्वीकर्तृषु वा
च्यमत्तयोर्वोपहसनीयःस्यात् पृ० ४
पं० २ मनुस्मृतौ कायं मन्त्रकला
पो भवतामिति "अत्र मनुस्मृतौ
मन्त्रकलापं कथमुत्प्रेक्षसे तत्र किं
मन्त्रप्रतिपादकत्वमस्ति, पूर्वं पृ० २ पं०
११ शक्नुतेत्यस्य स्थाने शक्नुवतेत्ये
षापदाशुद्धिः। अत्र पृ० ४ पं० १७
चाण्डालत्वापात इत्यस्य स्थाने

चण्डालत्वामाप्नुयात् इत्येवमपरास्मृतिः पृ० ४ पं० ११ वृहद्धारीतस्मृतीये पञ्चदशा ध्याये नावलुम्पन्ति ये विप्रा निवृत्ताश्च पशोर्वधं ते यान्ति नरकं घोरं रौरवं तमसावृतम् शतवर्षसहस्राणि तत्र स्थित्वा नराधमाः कृमिभिर्भक्ष्यमाणाश्च तिष्ठेयुः पूयशोणिते यूपास्तु उक्तसंस्कारै रोषध्यः पशवस्तथा यजमानेन सहिताः स्वर्गं यान्ति नरेश्वर इत्यादीति ॥ अत्र देवतार्थ मांसनिषेधे रौरवनरकप्राप्तिः प्रतिपादितेत्युच्यते अस्तु साच यागनिषेधाभिप्रायेणैवोक्ता। नतु वाममार्गनिषेधाभिप्रायेण वाममार्गनिषेधेतु स्वर्गप्राप्तिरेव ननु कथं यागनिषेधे सैतिचेच्छृणु यूपास्तु उक्तसंस्कारै रोषध्यः प

शवस्तथेतिवचनात् , नहियूपादय
स्सामान्यदेवतापूजनेविधीयन्ते
येनयजमानेनसहस्वर्गंगच्छेयुरि
ति नह्यत्रवामिनोयजमाना विव
क्षितास्तेषांनरकगमनस्यसाधनी
यत्त्वादितिभावः पृ. ५ पं. १ सीत
लप्रसादाद्युच्छिष्टे त्यत्रदान्त्यस
कारस्त्वदीयदन्तोच्छिष्टः पृ. ५ पं. ७
वामादिपदवींनकामपिद्रष्टुंसमर्थं
काधिरोढुमिति ॐ सर्वधर्म्मबहि
ष्कृतानामित्यादि ॐ हन्तभोः ॥
सर्वधर्म्मबहिष्कृताजनाः पूर्वोक्ता
नां शैवादारभ्य वैदिकस्मार्त्तपदवी
नांदर्शनेऽधिरोहणेन्वासमाभव
न्तु किंपुनर्वामादिपदवीमधिना
धिरोहन्ति तन्नतुसर्वधर्म्मबहिष्कृ
ताएवाधिकारिणोभवन्ति वामादी

त्यादिपदाद्बौद्धयवनकौलादयस्स
र्वे निषिद्धमार्गग्राह्याः नहितत्रवै
दिकस्मार्त्तकर्म्मकर्तृणामधिकारः
मीमांसकैर्धर्म्मस्वरूपमिदमुक्तम्
फलतोपि यत्कर्म्मनानर्थेनानुविध्य
ते केवलं प्रीतिहेतुत्वात्तद्धर्म्मइ
तिकथ्यते ❀ श्येनादिव्यावृत्त्य
र्थंफलतइति, तस्यहि नधर्म्मत्वं
श्येनेनाभिचरन्यजेतेति वेदबोधि
तत्वेपि तत्फलस्य शत्रुवधस्यानर्थ
हेतुत्वात्, पशुवीजादिवधजन्य
दोषेणाधर्म्मस्वल्पः संकरो सीतिसां
ख्यामन्यन्ते, तन्निरासायकेवल
मिति, माहिंस्यादितिनिषेधोहि
स्वप्रामाण्याहिंसाया अनर्थहेतु
त्वंद्योतयतिनतु (अग्नीषोमीयं
पशुमालभेत) इतिविहिताया

विधिस्पर्शे निषेधानवकाशात्
परिहृत्यापवादमुत्सर्गाः प्रवर्त्तन्ते
इति न्यायेन निषेधशास्त्रं कल
ञ्जहिंसां परिहृत्यैव प्रवर्त्तत इति
न धर्म्मफले दुःखलेशसङ्करोऽ
स्तीति सुव्यक्तं केवलमिति ध
र्म्मे च प्रमाणान्यपि प्रसिद्धानि
वेदोऽखिलो धर्म्ममूलन्तद्विदाञ्च
स्मृतिशीले धर्म्मसमयः प्रमाण
म् तथा चोक्तम्, पुराणन्याय
मीमांसा धर्म्मशास्त्राङ्गमिश्रिताः
वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्म्म
स्य च चतुर्दश इत्यत्र न नामबु
द्धादितन्त्रं प्रामाणिकेषु परि
गणितम्, तस्मात्कथन्ते कुस्मृ
तिञ्च व्यवस्थापनं कर्त्तुं शक्यम्
न हि पुराणेतिहास धर्म्मशास्त्र

वेदाज्ञान्यपहाय स्मृतिपदव्यपदेशं भवितुमर्हति, कुतो वेदविरुद्धे वाममयुक्तादितन्त्रे प्रामाण्यमभ्यनुज्ञातं स्यात्, नहि योनिक्षालित तोयतर्पणादि विधायके योनिमुखप्रक्षेपपूर्वक जप विधायके च वामतन्त्रे मद्यमांसादि भक्षके व्यभिचाराभिरनादि पापवासना वासितान्तःकरणैर्धूर्त्तैः पुरुषापसदैः प्रणीते स्मृतित्वं प्रामाणिकत्वञ्च सम्भवतीति, यथाहि डाकिनीमन्त्रसाधनादिषु म्लेच्छमन्त्रसाधनादिषु च, एतदग्रे सविस्तरं स्फुटीभविष्यतीति, ननु वामादितन्त्रेषु प्रामाणिकत्वं यदि न स्यात्तर्हि सिद्धिर्न स्यादि

तिचेन्न सिद्धिमात्रस्य प्रामाणिक
त्वाप्रयोजकत्वात् सिद्धिस्तु प
र्वतदेशे चाण्डालादिष्वपि द
श्यते वाममादितन्त्रप्रतिपाद्याः
क्षुद्रदेवता प्रत्युताशुद्धजनारा
ध्या एव तान्त्रिकोपास्याराधनेऽपि
शुभेष्टसम्पादनसामर्थ्यन्तासु
नास्तीति प्रसिद्धम् एवमेव वा
मिनोऽपि न स्वस्य परस्य वा धन
पुत्रादीष्टसाधकत्वम् किन्तु
द्विषन्तं पुरुषं ज्वरमारणोच्चाट
नादिभिः पीडयन्तीति परानिष्ट
सम्पादनं विना न तेषु सामर्थ्य
मिति पापहेतुत्वान्नास्ति धर्मे प्र
माणम् यदि कस्यचिद्वामिनः
सकाशात्कुमार्गमनुप्रविष्टस्सन्म
न्त्रं गृह्णीयात्तर्ह्येव वश्यं मद्यादिकं

पेयंस्यात् न पिबेच्चे त्तदैवसा नि
र्घृस्यादिति सकृदाराधिता पिसा
देवता तावन्नतं परित्यजति यावन्न
कुम्भी पाकाख्यं नरकं पतति
पौराणिका वैदिकाश्च दक्षिणाप
थवर्तिनस्तान्त्रिकाश्च यद्येहि
कदुरवार्थमपि तामुग्रा ति कूर
देवतां नाराधयन्ति किम्पुनः पर
स्मान्निःसमाद मार्थमिति पर
स्यालिक्षमपि सान्तौ कारच्युत
स्यस्ततो व्यघ्रमस्य मद्यादिषा
न्त्राह्मणस्यहीनस्यैवनत्वन्ते
हस्य सन्ध्यागायत्रीजपादानु
ष्ठायिनो ब्राह्मणस्य राजन्यस्य
वाऽन्निष्टं सम्पादयितुं क्षमा इति
किन्त्ववामादि मार्गे सिद्धिर्भव
तु मा वा पातत्यन्तु ध्रुवमेव नर

दिवलिदानान्मद्यादिपानाच्चाण्डालीगमनाद्यनुष्ठानाच्च तस्मान्नजातु वामादिमार्गसेवेत तत्सेवनेच पापोत्पत्तेः अतस्तन्त्रपदं वामादिनिषिद्धतन्त्रातिरिक्तनारदपञ्चरात्राद्यार्थतन्त्रपरम् तत्र प्रमाणमप्यस्तिभागवतादिपुराणम् प्रथमस्कन्धे तत्रावतारप्रयोजनेषु नारदावतारप्रयोजनम्. तन्त्रं सात्वतमाचष्ट इत्युक्तम् तत्र खलु मूर्त्युपासनं विहितन्तत्तु सर्वास्तिकशिरोधार्य्यम् तत्तन्त्रमभिप्रेत्यचैकादशस्कन्धेभगवद्वाक्यमुद्धवम्प्रति, वैदिकस्तान्त्रिको मिश्र इतिमेत्रिविधोमखः वैदिकीतान्त्रिकीदीक्षामदीयव्रतधारणम्, इति,

तस्मादस्मदुक्ताद्वैतब्रह्मोपासनेनैव सकलकार्य्यसिद्धौ किम्पुनः पातत्यहेतुना वामोपासनेन. परानिष्टसम्पादनमात्रप्रयोजनेनेत्यधिकं सप्तदशहेतुनिरूपणेवक्ष्याम इति पृ०५पं०१३ समीक्षितव्य इति वक्तव्ये दुरस्वीकरणं व्याकरणानभ्यासं व्यनक्ति, पृ०६पं०७ अनधिगताबाधितचित्तवृत्तिः प्रमाणमिति भट्टाद्य इति ॥ अत्रानधिगतत्वमबाधितत्वञ्च चित्तवृत्तौ विवक्षितमहोमट्टाभिप्रायवेत्तृत्वम् अत्रत्वर्थविशेषणमुभयमतोऽर्थपदघटितमेवलक्षणंस्वीकार्य्यम्, तथाचानधिगताबाधितार्थविषयकचित्तवृत्तिः प्रमा

म् । अतएवसाङ्ख्याचार्य्यैः। चित्त
स्यबाह्यवस्तूपरागात्तद्विषयासा
मान्यविशेषात्मनोऽर्थस्यविशे
षावधारणप्रधानावृत्तिः प्रत्यक्ष
मितिविशेषलक्षणमप्यर्थघ
टितमेव, इन्द्रियार्थसन्निःकर्षा
नन्तरंजायमानाऽयंघटइत्या
काराचित्तवृत्तिस्तस्यायस्तत्तद
र्थोपरक्तचित्तवृत्तिविषयकोऽ
हंघटंजानामीत्याकारोऽनुभवः
सप्रमाणभूतायाश्चित्तवृत्तेःफ
म्, अतएवपतञ्जलिःसूत्र
यान्चकार, चितेरप्रतिसङ्क्र
मायास्तदाकारापत्तौस्वबुद्धि
सम्वेदनम्, सां० पा० ४ सू० २२। अ
त्रतदाकारापत्तिश्चितेरर्थो
कारापत्तिरित्यर्थोदर्थपदच

रितमेवलक्षणमिति, पृ॰६पं॰१३
सम्बादिसफलयोरन्यतरदनर्थ
कन्तयोरैकार्थ्यात् कि पृ॰७पं॰२ता
दृश ज्ञानपूर्वकधर्म्मोपदेशत्वं
वेति विकल्पस्यायुक्तत्वमार्थज्ञा
नाभिलापकशब्दप्रयोगत्वस्यै
वतादृशधर्म्मोपदेशत्वात् कीदृ
शोयंविस्मरणशीलः स्वोक्तार्थ
मपिनावधारयति पृ॰७पं॰२
उभयत्रतन्त्रपदंवामादितन्त्रान्या
र्षतन्त्रपरम् अतःपरं पृ॰१०पं॰
१२ पर्य्यन्तमन्यत्र सर्वत्र कृतव्या
वस्थमविरुद्ध विषयंनतत्राति
पादनेप्रयोजनमित्युपरम्यते पर
न्तुवामतन्त्रे स्मृतित्वं निरस्तमेव
अभवामतन्त्रस्यैवस्मृतित्वाभावो
नतु नारदपंचरात्रादितन्त्रेषुप

न्तु तेषामपि स्वविषये प्रामाण्यं न तु धर्म्मशास्त्रपुराणादिवद्धर्म्ममात्रे प्रमाण्यं आर्षतन्त्रेषु प्रमाणमस्ति भागवतादिपुराणम् आर्षतन्त्राणि श्रुतिस्मृत्यादिवन्नान्यत्र प्रमाणानि किन्तु स्वविषये एवेतिभावः वामतन्त्र बौद्धतन्त्रयवन कौलतन्त्राणि वेदविरुद्धानि शिष्टैरस्वीकृतानीति न स्वविषयेपि प्रमाणानि । सम्प्रति भैरवीचक्रम भिहितन्त्रतत्प्रदर्श्यते ॥ तत्रोक्तम् ॥ प्रवृत्ते भैरवीचक्रे सर्वे वर्णा द्विजातयः निवृत्ते भैरवीचक्रे सर्वे वर्णाः पृथक् पृथक् १ मातृयोनिं परित्यज्य विहरेत्सर्वयोनिषु अस्यार्थः। वामिनः कुत्र विहरेत्स्वपत्नीभगिन्यादि

भिः समेत्य शूद्राश्चाण्डालाश्च प
तिता ब्राह्मणा बुवाश्चैकीभूय चक्रं
विरच्य तत्र भैरवो च्छिष्ट चाण्डा
ल्यादीन् मद्यमांसादिभिः संपू
ज्य तत्र वेश्यादीनां भगपूजां च
विधाय स्वस्वपत्नीभ्यो मद्योच्छि
ष्टं रहन्ति वेश्याभ्यो प्युच्छिष्टं गृह्ण
न्ति च तस्मिन्भैरवी चक्रे प्राप्तानां
चाण्डालादीनामपि द्विजत्वमेव
स्वीकुर्वन्ति पश्चात्स्वस्वगृहगम
ने तु चाण्डालश्चाण्डाल एव स्वी
क्रियते शूद्रस्तु शूद्र एव ब्राह्मण
श्च ब्राह्मण एवेति पृथक् पृथगेव
स्वीक्रियन्ते तत्र तु न भेदः स्वीक्रि
यते मद्यं पीत्वा ब्राह्मणश्चाण्डाली
मुपगच्छति चाण्डालश्च ब्राह्म
णीं समुपगच्छति सर्वे चक्रमध्य

गताः पुरुषाः शिवरूपिणः स्वी क्रियन्ते स्त्रियश्च पार्वतीरूपिण्यः सर्वाः स्वीक्रियन्ते एवं मदिराद्या धिक्याच्चाराडाल्यावमनं भवेत्तदा तं वमितमद्यं पात्रे रौवगृह्यात्व भजन्ते नैवाचरन्ति वेश्यायोनौ मुखं धृत्वा मन्त्रजपमनुतिष्ठन्तिते नैव तस्य मन्त्रस्य सिद्धिर्भवन्ति तत्र चमत्कारपंचकसेवने नैव मुक्तिर्भवतीत्युक्तम् मकारपञ्चकं च मद्यं मांसं च मीनं च मुद्रा मैथुनमेव च एते पञ्चमकाराश्च मोक्षदा हि युगे युगे १ अहो मुक्तिकारणमन्वेषणान्तेषाम् पीत्वा पीत्वा पुनः पीत्वा यावत्पतति भूतले उत्थाय पुनः पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते तं न्यन समाज्ञा तस्य मद्यपानस्य

मनुष्यजन्मग्रहणाभावे हेतुत्वंचो
त्यते न पुनर्नारकीयजन्मग्रहणा
भावे हेतुत्वमितिभावः अतस्ते
षु बहून्नृतभाषणेषु यदि किंचि
त्सत्यमप्यग्राह्यमविचु भर्हति
विषयुक्तान्नवत् इत्याद्यनेक
विधमल्पबुद्धयधर्म्मश्रेयस्कर्म्मा
नार्य्याभिहितंयुक्तिप्रमाणरहितं
वेदादिभ्योऽत्यन्तविरुद्धमनार्ष
मश्लीलमुक्तंतन्त्रिग्रन्थैर्नकदा
पिग्राह्यमितिमर्यादापालनेनवु
द्धिभ्रंशो नरकपातश्चमुक्तिस्तु
दूरापेत इतिमद्यपानस्यबन्ध
नसमाज्ञानात् मेरुतन्त्रेवामे
नामतंतत्रहि जलन्धरनिर्जित
देवानांशिवं प्रतिगमनंतेनच
शिवेन गौरीतसम्भार मुक्ता तत्र

मथोत्पत्ति दैवदानवैर्मथ्यमाना
त्समुद्रादुत्का तान्वासुराजगृहुः
तदुक्तम् इत्युक्तांदानवाः सर्वेशु
क्राचार्य्यवरात्सुरान् जित्वाता
ञ्जगृहुस्तस्याः कलशाच्चपपुःसु
राम् ४१ पुनस्तांमातृका पपुरित्यु
क्तम् पीत्वाचतांतयामत्तास्ताः
सुरांवरान्ददुः अन यास्मान्त
र्पयन्ति प्रेषंमृत्यान्तियेनराः ते
ऽस्मद्रूपानसन्देहोभुक्तिमुक्त्येक
भाजनम् ४२ सुरागङ्गासुरासि
न्धुःसुरादेवीसरस्वती सुरागोदा
वरीरेवा सुरैव परमंपदम् ४४ अत्र
मद्यंपीत्वैवमातृकाभिर्वरोदत्तः
किं किं न वदति मदोन्मत्तः मद्यम
त्तानांवरशापौनग्राह्यौ किञ्च
सासुरापि दानवैरेवपीतानदेवै

रतस्तत्राप्यप्राशस्त्यमेवेति पुनर्म
मन्थुजलधिंवलहीनैः सुरैस्सह ध
न्वन्तरिः समायातः सुधाकलश
हस्तवान् ४६ सुरामत्तास्तुतेप्रोचुः
किमिदंपुरुषाहृतम् उवाचमधुरं
विष्णुस्सान्त्वयन्प्रतारयन् ४७
पूर्वं देवास्सन्तु सुपमद्यस्यास्यचपान
तः अग्रेयदिदमुत्पन्नंपीयूषंतत्
प्रकीर्त्तितम् अग्रेप्येतत्तुदेवार्थं
निस्सारंपुरुषाहृतम् ४८ अत्र
स्पष्टंप्रतीयते विष्णुकृतवञ्चनम
ग्रेयदिदंपीयूषकथनंसुरायाः त
तोप्यग्रेभवायास्सुधाया निस्सा
रत्वकथनंच किंचास्यमद्यपान
तः पूर्वं देवासन्निचाति सम्प्रतिम
तदेवत्वमितिस्फुटंप्रतीयते अग्रे
ऽपिमोहिनीरूपेणसुधापानं देवा

नामुक्तं ततश्शुक्राचार्यो ऽसुरान्
मद्यमत्तान् दृष्ट्वासुरांश्शप्तवान् धि
ग्धिगज्ञानं सुराणामनयासुर
याहृतम् तस्मादिमां येपिबन्ति स
र्वे पातकिनस्तु ते प्रयान्तु निरयं
घोरं तिष्ठन्त्विह पिशाचवत् ५२
किञ्च यच्छ्रुत्यां येन तन्मतापक
र्षपूर्वकस्वस्वतोत्कर्षं दर्शयाम:
मेतन्त्रे ऽप्रामाणिकेप्युक्तम् नि
बध्ति मेग्लोके कर्तव्या वैदिकी नि
ष्ठा स्मार्ती स्यान्मध्यमोत्तमा पौ
राणी मध्यमा ख्याता तान्त्रिकी
त्ववरा स्मृता ६२ अत्र भवदीयग्र
न्थे वाममार्गीयैर्वाममतस्य प्रतिपा
दायाऽपासनाया अधमत्वं वेद
स्मृतिपुराणेभ्योऽभिन्नत्वं च प्रतिपा
दितम् कुतोऽवस्तात् तत्त्वं व्यवस्था

य्यतेमेतन्त्रेवामिनांविरोधार्थे
उपासनाचतुर्धाविभक्ताउत्तमातु
वैदिकी मध्यमोत्तमास्मार्ता पौ
राणिकीमध्यमा अधमातान्त्रि
की देवीरहस्येतुरथंप्रतिवाक्य
म् बलिमांसादि पूजेयं विप्रवर्जी
मयोरितातेषांकिलसुरामांसैर्नो
क्तापूजान्पकचित् किन्चत
त्रैवयामग्रन्थे उक्तं अधिकमात
श्लोके द्विजैरिमादेवतानोपा
स्याः छिन्नमस्ताचमातङ्गी ब
गलाचोग्रतारिकायोगिनीयक्ष
पत्नीनां त्रैपुराचदुकादयः १०३
शाबराश्च पुलस्यानि न जपा
द्विजजन्मनि उपासनात्रिविधा
प्रोक्ताश्रेष्ठतन्त्रनुसारिकी १०४ त
स्यांतुमानसीपूजा पोजेमुख्यतमा

स्य तान्त्रसो दक्षिणो मार्गः प्रति
माया श्च पूजनम् ।१०५ वाम्वोप
चारैस्तदाद्यन्त हि शिष्यते ताम
सोपासनस्योक्तं पीठादौ वलिद
नतः ।१०६। वाममार्गस्तत स्वाद्यं
वर्णहित्वा प्रशस्यते एवापद्या
तु सम्प्रोक्ता वामदक्षिणयोः प
रा।१०७। सम्प्रति कथयत्वीये
पितन्त्र ग्रन्थे वामोपासनस्य
तामसत्वेनाधमत्वम् (तत्) त
स्मादाद्यम्, सात्त्विकम् (विशि
ष्यते, श्रेष्ठतरमित्यर्थः । अत्रै
व ब्राह्मणस्य वाममार्गे नाधि
कार इत्युक्तम्, कुतो नेतिचेत्,
वाममार्गस्तत स्वाद्यं वर्णं हित्वा
प्रशस्यत इति वचनात्, किंचै
क लक्षणयुक्तस्य ब्राह्मणबु

वस्याधिकारो प्यत्रैवोक्तः। एकादश प्रकाशे त्रिपञ्चाशत्तमे एकलक्षणसंयुक्तो वामस्तस्य फलप्रदः शूद्रादियवनान्तानां सिद्धिर्वामपथे स्थिता ५३ वाममार्गस्थितो विप्रस्तुलसीं नस्पृशेत्क्वचित्। नस्पृशेद्वैष्णवं विप्रं प्रणमेन्नच्चवैदिकम्। ५४ हीनो विप्रः क्षत्रियाद्या वाममार्गरता अमी-इत्यनेनस्फुटतया प्रतीयते ये ब्राह्मणब्रुवाः सुरापानादिभिर्ब्राह्मण्या देवच्युतास्तेषामधिकारः। तत्तच्छूद्रादियवनामधिकार इति सिद्धम्। एतच्च वामिनस्तुलसीस्पर्शनिषेधाद्भागवतब्राह्मणस्पर्शनिषेधाच्च प्रतीतम्।

यस्य हि मद्भक्तस्य विप्रस्य स्पर्शे
सिद्धिर्वासिनो नास्ति स किम्पुनः
स्वयमेवाधिकुर्य्यात्। अत एव
वाममार्गीयग्रन्थेभ्यो निश्चितं
ये पूर्वं त एव मद्यपानादिना जाति
भ्रष्टास्तेषामेवाधिकारः। कालि
कापुराणे प्युक्तम्। ब्राह्मणश्च
सुरां दत्वा ब्राह्मण्यादेव हीयते।
मेरुतन्त्रे एकादशपटले प्युक्तम्
सर्वधर्मविहीनाये वर्णाश्रमविव
र्जिताः कौलेवा वाममार्गे वा भुक्ति
मुक्त्योश्च भाजनम्॥६४ अत्र सर्व
धर्म्महीनानां वर्णाश्रमरहितानां
पुंसां कौले वामे चाधिकारस्स्फुट
तया प्रतीयते। निन्दन्तु बान्धवाः
सर्वे त्यजन्तु सुतादयः जनाह
सन्तु मां दृष्ट्वा राजानो दण्डयन्तु

वा।६५। लक्ष्मीस्तिष्ठतां यातु न
मुक्ता निपतन्ति मानाः।६६। अग्नि
स्पर्शतयेदम्ब्रतीयते पूर्वैर्वा निर्न
राजनो दण्डयन्ति स्म बान्धवा स्व
जन्ति स्म, अत एवा यावधि प्रच्छ
त्वेनै वानुतिष्ठन्ति कामिनो राजद
ण्डः भावेपीदानीं पूर्वाभ्यास एव
प्रच्छन्नत्वे हेतुर्हि ति. किन्त्वा स-
कामाचारस्य निन्दापि श्रूयते॰
पेयं मद्यं पलं खाद्यं समालोक्य
प्रियामुखम्. इत्येवाचरणम्मो
क्षमार्गाः प्रवदन्ति च।७२। म
द्यपानेन भुजयो यदि सिद्धिं ल
भन्ते चेत् मद्यपानरताः सर्वे
सिं सिद्धा नभवन्ति मे।७३। मांस
भक्षणमात्रेण यदि पुण्या गति
र्भवेत् क्रव्यादानां तदा मोक्षो मां

स्यादन्यन्न मुच्यते ।७४। स्त्रीणां भो
गेन ये देवा यदि मुक्तिं प्रजायते तद स
र्वे पि मुक्ताः स्युः कस्य जन्म भवि
ष्यति ।७५। सुरादर्शन मात्रेण कु
र्यात्सूर्य्यावलोकनम् तस्माद्वि
प्रो हि राजन्यो वैश्य स्नान सुरां पि
वेत् ।७६। तस्याः संसर्गमात्रेण प्रा
णायाम त्रयं चरेत् आजानुभ्यां
भवेत्स्नानं नाभ्यामुपवसेद् हः ।
७७। ऊर्द्ध नाभेस्त्रिरात्रं तु मद्यस्य
स्पर्शने विधिः सुरापाने कृते ब
ह्निज्वलितां तां मुखे क्षिपेत् ।७८
मुखे तया विनिर्दग्धे ततः शुद्धि
मवाप्नुयात् ।७९। अत्र सिद्धिमुक्ति
मुक्त्यादि हेतुत्वेनाभिमतानां वा
मप्रतिपाद्यानां निष्फलत्वेन सु
रादीनां सर्व संयोगानां निषेधः

न तु सामान्यतो राग प्राप्तानां विशेषतो निषेधाभिधानात् अतएवा
ग्निमश्च राग प्राप्त निषेधो बह्वना
र्थः स्वीकार्यः। अतः किं ज्ञायते शू
द्रस्य ब्राह्मणस्य वामे नाधिकारः
एवं क्षत्रिय वैश्ययोरपि शूद्रो वे
त्यात तयोर्नाधिकारः। पतितो वे
त्याती वामाद्यनुष्ठानमधिक्रिय
ते पतित द्विजानां शूद्रादि यवना
न्तानान्तु तत्रास्त्येवाधिकारः।
अतो वामकौलादि दीक्षातः पूर्व
मेव मद्य पानादि जाति भ्रंश
करण कर्म कर्तृणामधिका
रः चाण्डालाति शूद्र यवनान
न्तु सर्वदैवाधिकार इति येतु
जाति भ्रष्टा अपि द्विजाः प्रद
त्तास्तेषां कस्यचिद् द्रमिनस्त

ऽऽह्निनाश एवोपस्थितस्तेऽस्या
न्यानप्युपदिशन्ति स्वयंनष्टः
परान्नाशयतीत्याभाणकमनु
सरन्तः अतोमेरुतन्त्रानुरोधे
नैवतन्त्रस्यस्मृतिभिन्नत्वमा
यातमिति व्यर्थः परिश्रमस्तस्य
पृथक्स्मृतित्वसाधनायेति
यदाहि तत्र चतुर्थोपासनोक्तावै
दिकी १ स्मार्ती २ पौराणिकी ३ ता
न्त्रिकी ४ इत्यत्र द्वितीया चतुर्थी
तो भिन्नेति सिद्धम् वामतन्त्र
कौलतन्त्र बुद्धतन्त्र यवनतन्त्रा
दयस्सर्वे ब्राह्मणादिना नानुष्ठे
यधर्मा इत्यपि च सिद्धम् स
न्ति च नारद पञ्चरात्रादयोऽनु
ष्ठेयधर्मा इति च सिद्धम् नवे
ष्णुपतितानामधिकारः कश्च

यमो: वाममार्गस्थितो विप्रस्तु लसौं न स्पृशेत्क्वचित् नस्पृशेद्वैष्णवं विप्रं प्रणमेन्नचवैदिकम्। इति नैति विप्रः हनिमाया वामाममार्गीरनात्वमी अन्नतुलसी स्पर्शी भागवतं विप्रस्पर्शी वैदिकब्राह्मण प्रणामं नं निषेधे वामतन्त्रस्य कोऽपि प्रायः। चाण्डालो चर्मकारी चमारादौ तुलसीतथा श्वपचो रवनवीचैव कैवर्ती विश्वयोनिका अत्रासं स्पर्शो वमितमद्यपानेच कोऽपि प्राय इत्यविवद, यदितु लस्यादि स्पृष्ट स्पर्शे सिद्धभाव:। चाण्डाल्या द्यस्पृष्ट स्पर्शे व शीघ्रंमन्त्र सिद्धिरित्यपि प्रायश्चेत्तर्हि कथं न म्लेच्छध

र्मिकत्वं वामे स्वीकरोषि कथंच
न तस्याशुद्धाचारत्वमिति· प्र
सिद्धमेव हि म्लेच्छमन्त्रोपास्या
म्लेच्छदेवता शुद्धौसत्यां न प्र
सीदन्ति · प्रत्युत ज्वराद्युपद्र
वैः साधकम्पीडयन्ति स्वप्नादि
षु च स्वसाधकमुपदिशन्ति,
त्यज वैदिकधर्मं त्यज सन्ध्या
वन्दनम्· त्यज भगवन्मन्दिर
गमनम् त्यज विप्रसंन्यासि
प्रणामम् स्नानादिनियमं त्य
जेति अपवित्रे भूत प्रेत पिशा
च ब्रह्मराक्षस वेताल डाकिनी भैर
वादयोऽप्युग्रक्रूरा भयङ्कराका
रा स्तमुपेत्य वदन्ति, चर्वाण
लीगमनम्, पिब मद्यम्, भक्ष
य मांसम्, कुरु मलमूत्रस्प

शेम: कुर्वे स्थिरस्य शेमः कोनो
नास्ति कां स्याप्य जपन्वर भगं
पूजयभगिनीं भज श्मशान
भस्मधारणां कुर्वित्यादि यदि
कश्चिच्चार्वाकं चिद्धीलोन कु
र्यात्तं लोकेशपन्ति न चतस्य जं
न्तिसकृदाराधिता अप्याकु
म्भी पाकादि निरयपातनमि
त्यलम्प्रतिपल्लवितेन। सम्प्र
त्यस्यानुमानाकौशलन्द्रीया
मः। पृ०१०पं०१४ तल्लब्ध मैनप्र
माणं बौद्धादिभिरनुष्ठेयत्वादि
त्याद्यनुमाना न्यस्यैव सुखवि
वरस्थानि न तु कस्यचिद् विदु
ष आचार्यस्यवा सुखारविन्द
स्थानि प्रतिज्ञैव यं न केन चि
त्कृता प्रतिज्ञा च कामतन्त्रे धर्मे

न प्रमाणं बुद्धतन्त्रं धर्मे न प्रमा
णमित्याकारे च, अत्र हेत-
वोपि भवन्तु रवस्था एव बौ
द्धादिभिरनुष्ठेयत्वमपि तन्त्र
प्रतिपाद्य कर्मणि भवतु न तु
तन्त्रमेवानुष्ठेयमभवितुमर्हति
किंच वामतन्त्रप्रतिपाद्यं मां
सादिकन्तत्कथमनुतिष्ठन्ति
बौद्धाः प्रसिद्धमेवाहिंसापर
मो धर्म इति तेषां कथनम्
अतस्तन्त्रमात्रपक्षीकुर्वतोऽप
र्थिकन्तेवचः। वाममार्गीय
त्वहेतुरप्यसफलो नारदपञ्च
रात्रादितन्त्रे तदभावात्, वेदान
नुलत्वमपि तत्राषे तन्त्रेभागा
सिद्ध एव, किंच वेदविरुद्ध
हिंसादिघटितत्वमेव वेदान

नुकूलत्वमतोहेतुद्वयकथन
मप्यसङ्गतमेवतयोरेकार्थ
त्वात्, तन्त्रमात्रेतुवेदविरुद्ध
हिंसादिचरितत्वमपिनास्त्ये
वेत्यपार्थकंकथनम्, भैरव
देव्यादिमतमनुष्यदेवतोद्दे
श्यकेति, अयमपिहेतुर्ने
तन्त्रमात्रेऽतोभागासिद्धएव.
सर्वजातिशुद्धकरत्वादिति.
सर्वजातिशुद्धिकरत्वादिति,
वक्तव्येसर्वजातिशुद्धकरत्वा
भिधानंव्याकरणस्याप्यनभ्या
संमस्यव्यनक्ति, सर्वजाति
शुद्धिकरत्वमपि वामकौला
दिष्वेव, तदुक्तंमेरुतन्त्रेदीक्षा
प्रकरणे, शैवोवावैष्णवो
वापिस्त्रीशूद्राणांनमोऽन्त

कः नाममन्त्र इतिज्ञात्वा चाण्डालान पिदीक्षयेत्। ८४। नत्वस्मदभिमतं नारदपञ्चरात्राद्यार्षे तन्त्रेषु सर्वेष्वशुद्धिकरत्वमिति, वेदविरुद्धहिंसादिघटितत्व हेतुस्तु वेदाननुकूलत्व हेतुदूषणावसरे दूषितः। शिष्टापरिग्रहत्वादिति सप्तमो हेतुः शिष्टपरिग्रहीतुमयोग्यत्वादित्यर्थमस्त्र, अत्र तन्त्रमात्रे पक्षे नारदपञ्चरात्राद्यार्षे तन्त्रान्तर्भावेण हेतु हयाभावात् भागासिद्धिस्तु स्फुटैव, शिष्टापरिगृहीतत्वादिति बन्धे शिष्टापरिग्रहत्वाभिधानं शब्दशास्त्रानवबोधत्वद्योतकम्, किंचोभयोर्हेत्वोः को विशेषः। अथ

तस्यैक्यात्, एवं महापातकसं
सर्गिपरिगृहयोग्यत्वस्यापिमा
गासिद्धत्वम्, एवं तन्त्रमात्रं पक्षी
कुर्वतस्तेसत्यप्रगादावस्वीकृ
तत्वेनासदातनत्वमपि नास्त्य
प्रामाण्यसाधकं केनापनमु
पगमात् आप्तोक्तस्यैवबाक्य
स्यप्रामाण्यं तच्चसदातनमस
दातनं वा अन्यथा लौकिक
वाक्यानां सदातनत्वाभावात्
प्रमाणत्वं नस्यादिति, महर्षी
तिरिक्तकल्पिततत्वं निर्येका
स्वघटितत्वमन्त्रत्वमपि तन्त्र
मात्रे नास्ति, तयोरर्थैक्यभावा
त्, अहंभैरव इति भावनोप
देशस्येनस्वातिरिक्तदेवता
निषेधकत्वादिति तादृशाभाव

नाविशिष्टपुरुषप्रणीतत्वेन
ज्ञायमानत्वादिति चोभयस्य
तन्त्रसाङ्केस्योक्तत्वान्नाप्रा
माण्यसाधकत्वम्। अभेद
भावनयैव पतितत्वमितिश्रु
तेः देवो भूत्वा देवानप्येति
इत्यत्र देवो भूत्वा देवानुप
जैतीति श्रुतेश्च, सुरामांसरे
तोभक्षणादेर्विधायकत्वा
दित्यपि न तन्त्रमात्र इति भागा
सिद्धेरेतदवाच्यत्वसम्य क्कि
न्तिमाविधिरूपत्वमपिन
सम्भवति। पृ० ११ पं० ७ इति
तेनात्माशङ्कमानहेतवः।
एभिश्च हेतुभिर हेतुभिरेते
तन्त्राणां धर्मेऽप्रामाण्यमा
हुः तेषामेषा कुसृष्टिक

ल्पनाक्रमप्रश्नः खण्डयत इत्यु
क्तम् ❀ कथयभोः केयमे
षा कुसृष्टिकल्पना, किं न्या
यवैशेषिकग्रन्थेषूपलब्धा
क्वचित् किंवा पूर्वोत्तरमी
मांसयोः नहि न्यायकुश
लो मीमांसानिपुणो वा भवा
दृशानां बुद्धिगम्यां कुसृष्टिं
कल्पयति किंवा सांख्य
योगयोर्ग्रन्थे स्थितं कुसृ
ष्टिः किंवाऽऽचार्यैर्विनि
बन्धेषु क्वचिद्दृष्टा येन के
षांचिदिति वदसि माति
चेयं त्वदीयैव नहि तांत्रि
ते तादृशा कुसृष्टिकल्पको
मीमांसादिषु शास्त्रेष्वेताऽ
ध्यापयिता वा, तस्माति

दोषकेषु चित्कुत्र विकल्प
नात्व दोषमारोपयन्तश्रौदि
तोसि नोचेद्दुर्गीयकुत्रेयं कु
स्त्रिरिति नास्याः खण्डनेना
मस्य वैधत्वं वैदिकत्वञ्च
सिध्यति मद्यादीनां ब्राह्म
णकर्तृकन्देयत्वं देवतायै स्व
यं च तद् वशिष्टस्य पेयत्व
मप्यस्याः खण्डने न सिध्यति
ब्राह्मणकर्तृकं देवतायै सु
रादानं तन्त्रग्रन्थेष्वपि नि
षिद्धम्, तदुक्तं श्रीक्रमे, न
दद्याद् ब्राह्मणो मद्यं महादेव्यै
कथं चन वामकामो ब्राह्मणो
पि मद्यं मांसं न भक्षयेदिति·
सर्वथैव तन्त्रस्मृतिपुराणेति
हासेषु ब्राह्मण कर्तृकं सुरा

दानं निषिद्धमेतच्चाग्रेवक्ष्यामि
बौद्धाय प्रमाणैः स्फुटीभवि
ष्यतीत्युपरम्यते, अत्रप्रथम
तोवामत्वण्डनेमण्डनेवाना
नुमानापेक्षा षाड्गम्यवि
षयत्वात् अस्तिचेच्छामत
न्त्रंधर्मेन प्रमाणं धर्मेबु
द्ध्याप्रणीतत्वाभावादित्यनु
मानम् बुद्धतन्त्रंधर्मेनप्र
माणं धर्मेबुद्ध्याप्रणीतत्वा
भावादिति चानुमानम्, अ
त्रापिधर्मबुद्ध्याप्रणीत
त्वाभावः पुराणेतिहासेभ्यो
निश्चेतव्य इति, अत्रैवत्व
दुक्तबौद्धादिभिरनुष्ठेय
धर्मत्वहेतोः कथंचिदुप
योगः। धर्मसाधनक्रिया

यं भा क्तः। अनुष्ठेयधर्म्मत्व
न्त्वस्मदुक्तमावश्यकम्,
अन्यथा त्वदुक्तरीत्या तन्त्रमा
त्रस्यानुष्ठेयत्वाभावात्त्वरू
पासिद्धिस्स्यात् न हि तन्त्र
मनुष्ठेयं किन्तु तन्त्रप्रतिपा
द्या क्रियैवेति, नापि त्वदुक्त
तन्त्रमात्रस्य पक्षत्वं सम्भव
तीति, बौद्धैर्बुद्धतन्त्रभिन्न
स्याननुष्ठानात् यत्र हि धर्म
बुद्ध्या प्रणीतत्वन्तत्रैव प्रमाणत्वमि
ति हि व्याप्तिः यदि च वामतन्त्रस्य
शिवप्रणीतत्वन्तदर्थं हेतुः के
चित्तु मद्यमांसादिभक्षकैश्चाण्डा
लीगमनादिभिर्जातिपतितैश्च धू
र्तैर्व्यभिचारिभिर्यत्किंचिदधी
त्य शिवगौरीसंवादव्याजेन प्र

णीतंवामकौलादितन्त्रमित्याहुः
तेषांमतेत्वन्येहेतवोधूर्त्तप्रसिद्ध
त्वमह्यर्थ्यतिरिक्तकल्पितत्वादयः
अन्येतुशिवेनबुद्धेनचदैत्यदानवां
श्छलयितुं वेदविरुद्धानितन्त्रा
णिप्रणीतानिततः प्रभृत्येवशि
ष्टैः प्रमाणत्वेनागृहीतानीतिव
दन्ति ननुकिमर्थमीश्वरेण
तेषांछलनमनुष्ठितमिति चे
च्छृणुदैत्यदानवादिभिर्वैदिक
कर्मणा स्वस्मिन्नतिशयमुत्पा
द्यदेवमनुष्यादि जगत्सकलंपी
डितमासीत्तदवधार्य श्रीभ
गवताजिनगृहेऽवतीर्य्य वेद
विरुद्धानितन्त्राणिप्रणीतानि
तैश्चतानीषद्बुद्धीन् सर्वैदिकध
र्मच्युतांश्चक्रे तत्कर्मजनस्व

स्मिन् तादृशगतिश्रयाभावान्नश्रा
न्तादेवादिजगत्पीडयितुमितित
दुःखनार्थं प्रणीतानितन्त्राणि
नप्रमाणानि नीतिपुराणप्रसिद्धम्
तद्वद्वामकौलतन्त्रमपिनधर्म
बुध्याशिवेनप्रणीतम् किन्तु
जलन्धरोदैत्यः कश्चित्कुम्भक
र्णानुजातातेनचपीडितादेवाः
शिवसमीपमुपजग्मुस्तेनचगौ
रीप्रश्नव्याजेनवामतन्त्रंप्रणीतं
तच्चासुराजगृहुः यद्यपितन्त्रमे
तत्तन्त्रेनैवैतत्प्रतिपादितं जल
न्धरःशिवाद्दीक्षांजग्राह नापिदेवा
वञ्चनार्थत्वात्तन्त्रस्य तथापिस
र्वेधर्मविहीनायेवर्णाश्रमविव
र्जिताःकौलेवावाममार्गे वा भुक्ति
मुक्त्योश्च भाजनाः इत्युक्तत्वा

हैत्यादिभिरेवगृहीतमितिनिश्ची
यते अतएवतन्त्रसुराग्रहणान्दे
त्येष्वेवोक्तम् सुधाग्रहणाच्चदेवे
ष्विति अतएववाममार्गीये भै
रवीचक्रे चाण्डालादिसाहचर्य्या
भिधानान्मद्यमांसादिनिषिद्ध
पदार्थभक्षणाच्चन शुद्ध वैदिक
धर्म्मानुष्ठातॄणामति पवित्राणा
मेषांदेवादीनां पीडने विनाशने
वाशक्ता अभूवन्नित्येव हेतोर्वा
मतन्त्रं प्रणीतम् प्रसिद्धमेवैतद्य
त्सर्वदेशेषु स्नान सन्ध्यानुष्ठाना
दिशुद्धाचाररहितेषु पतितेषु म
द्यपानाद्यशुद्धरवतस्वेव वाम मा
र्गानुष्ठायिनां देवताश्चते सा ए
धिताः प्रभवन्तीति न तु वैदिक
पुण्याचारवत्सु नतु वामकौला

रिषु न सर्वत्रोच्छिष्टचाण्डालाद्या
राधनमेव केवलमपितु विष्णवाद्या
राधनं सात्विकमप्यस्तीत्यतोग्रा
ह्यमेव तदितिचेन्न विष्णवादीनां
सात्विकोपासनस्य वञ्चनार्थ
मभिहितत्वात् यद्धि खलु समर्द्रैदि
कमार्गविहितन्त्तेनैवेष्टसिद्धेर्व्यर्थ
न्तत्सात्विकं वाममार्गीयोपास
नम् , स्वदृतिस्थंचाण्डालाहृत
डुगगज्जलमिव विषसम्पृक्तान्न
मिवचाग्राह्यम् नह्येकदेशेन
चग्रन्थानां प्रामाण्यम् एकदे
शस्य सर्वत्रैव वेदानुकूलत्वात्
अहिंसापरमोधर्म्म इत्येकदेशो
वेदानुकूलत्वं शाक्यग्रन्थेष्ववशे
ष्टमितिनैतेन ग्रन्थप्रामाण्यमि
ति तस्माद्वाममार्गीयोक्तोग्रा

यादिषु दक्षिणाम्नायस्यवेदानु कूलत्वपि ततोभिन्नाम्नायानां वेदस्मृतिविरुद्धत्वात्त्याज्यमेव वा मतत्वम् अतोवेदविरुद्धत्वप्रदर्श नाय पूर्वं प्रदर्शितोपिवाममाचारः सम्प्रतिवाममार्गीयाचारो मेरुत न्त्रस्थः प्रदर्श्यते तत्रादौबलि दाने पशून भितान् निरूपयति नरश्वमहिषः कालश्छागोऽवि सारसस्तथा कपोतः कुक्कुटश्चेति सामान्यं पूर्वपूर्वतः ४०२ अत्रस्प ष्टं प्रतीयते नरमांसादि निन्द्यम त्यपवित्रमपिभक्षयन्तिवामिनः तदपिचाण्डाल्याद्युच्छिष्टम् कु तस्तज्ज्ञातमितिचेत् तत्रैवमे रुतन्त्रेऽभिहितम् आत्मोच्छिष्टं नदातव्यं परकीयंनभक्षयेत् ॥

उच्छिष्टं भक्षयेत्स्त्रीणां नाभ्य उच्छिष्टमर्पयेत् २०७० अत्र स्त्रीयोच्छिष्टं स्त्रीभ्यो न दद्यात्प्रत्युत स्त्रीणामुच्छिष्टं भक्षयेदित्युक्तम् नन्वत्र स्त्रीणामिति सामान्यशब्दात्कथं विशेष स्त्रीणां चाण्डाल्यादीनां ग्रहणेन दोषमारोपयन्ति भवन्त इति चेच्छृणु यानार्यश्च क्रपूजनेऽभिमताः मेरुतन्त्रे वामिनां सिद्धिदात्र्येरास प्रकारे चाण्डाली चर्मकारी च मातङ्गी पुल्कसी तथा श्वपची खट्टकी चैव कैवर्ती विश्वयोनिका २२४ कुलाष्टक मिदं प्रोक्त मकुलाष्टक मुच्यते कडुकी शौण्डिकी चापि शस्त्रजीवा तुरङ्गकी २२५ गा यकी रजकी शिल्पी कौलिकी तीन

तथाह्मी स्त्रियोमन्त्रसमायु
क्ताः सम्ययाचारपालिकाः ३१६
आसांस्त्रीणांमद्योच्छिष्टंभुञ्जा
नाः कथंनजातिपतिताभवेयुरि
ति अन्यदपिबहुलरमद्योग्यं
कर्मनिरूपितंपञ्चानाद्द्रष्टव्यं
अतएवप्रच्छन्नतयावामिनस्त
त्तुतिश्वान्ति तद्गुणांच सतत्
कंगतांवार्तांबहिर्नैवप्रकाशयेत
तेभ्योद्रोहंनकुर्वीतनाहितंचस
माचरेत् ४८६ नानिन्देन्नहसे
दृत्यासगच्छेद्योगिनीपदम् ॥
प्रवृत्ते भैरवीचक्रे सर्ववर्णाद्वि
जातयः [निवृत्ते भैरवीचक्रे स
र्ववर्णाद्विजातयः] निवृत्ते भैरवी
चक्रे सर्ववर्णाः पृथक् पृथक् ॥
एवंचक्रस्य महात्म्यं देवी पूजो

पयोगतः ४८९ स्त्रियोऽथपुरु
षः चण्डश्चाण्डालोवाद्विजोत्तमः
चक्र मध्ये नभेदोस्ति सर्वे देवस
मास्मृताः ४९० चक्रमध्यगता
स्सर्वे पुरुषाः शिवरूपिणः स्त्रि
यः सर्वाश्चपार्वत्यस्तस्माद्भेदंन
कारयेत् ४९१ मद्यकुम्भसहस्रै
स्तुमांसभारशतैरपि नतुष्यति
महामाया भगलिङ्गामृतंबिना ४९२
भगिनीं वासुतांभार्य्यां योदद्या
त्कुलयोगिने मधुमत्तायचक्रे
वाचक्रे वापुरायंमातस्तु ४९७
अहोवामिनांमुक्तेलज्जानामाचा
रः अत्रचकौलिकायमद्यमत्ताय
स्वभगिनी पुत्रिकाभार्य्यादानमपं
राविहितम् किमतःपरं निर्लज्ज
त्वकारणम् यत्रहि चाण्डाल्या

दिव्यपत्याचारः किमतःपरं पातत्यकारणम्, अत्रांशिष्यायस्वभगिन्याद्यर्पणे प्रयोजनमाह कौलिकाचार्यः। भगलिङ्गामृतं विना महामायामद्यघटसहस्रैरपि न तुष्यत्यतो युवतिं कामगर्वितामित्यादिपूर्वोक्तलक्षणवतीं स्वभगिनीं मातरं वाऽवश्यमर्पयेदिति तस्याभिप्रायः। सम्प्रत्यनुमानानि निरूपयामः। बौद्धतन्त्रधर्म्मो न प्रमाणं अधर्म्मबुद्ध्या प्रणीतत्वात्, बौद्धादिभिरनुष्ठेयधर्म्मत्वाद्वा चार्वाकादितन्त्रवत्, व्यतिरेके पञ्चरात्रवत्, वामतन्त्रधर्म्मो न प्रमाणं धर्म्मबुद्ध्या प्रणीत

त्वाभावाद्बुद्धतन्त्रवत्, अत्रत्व
दुक्तहेतवोऽप्यन्ततिप्रयोजनकाः
प्रयोज्याः। वेदाननुकूलत्वात्
सर्वजातिशुद्धिकरत्वात्, शि
ष्टापरिगृहीतत्वात्, प्राय
श्चित्तभिन्नमहापातकिपरि
ग्रहयोग्यत्वात्, धूर्त्तप्रक्षिप्त
घटितत्वात्, महर्ष्यतिरिक्त
कल्पितत्वात्, सुरामांसरेतो
भक्षणादेर्विधायकत्वात्,
वेश्यायोनिक्षालिततोयत
र्पणविधायकत्वात्, असदा
नत्वादयो नाप्रामाण्यसाध
का आप्तोक्तं वाक्यं प्रमाणं स
दातनम सदातनं वेति ननियम:
मः सदातनमेवप्रमाणम्,

अत्र केचित्कौलतन्त्रं वामत
न्त्रं चार्वाकप्रणीतं मन्यन्ते ये
हि तत्राप्याचारल- मिर्म
द्यमांसादिभक्षकैर्धूर्तैः प्र
क्षिप्तं स्वविषयसुखसिद्धै
केवलमिति वदन्ति, अपरेतु
सर्वमेव धूर्तजनैः स्वयं शि
वगौरीसम्वादेनासकृत्कामि
दं सौन्दर्यलावण्यवतीं युवतिं
शिष्यभार्यां भगिनीं वा निरी
क्ष्य तां जिघृक्षुणा केनचित्स्व
शिष्यबुद्धिव्यामोहार्थं प्रणी
तमिति वदन्ति, अन्येत्व
धिकारिभेदं कल्पयन्ति,
ये हि पूर्णाभिषिक्ताः सर्वे
धर्मबहिष्कृता मद्यादिपा
नाद्युत ब्राह्मण्या ज्ञास्तु

वाश्च ते सर्वे धूर्त्ताश्चाण्डाली
गमनाद्यसत्कर्मकारिणो
वामेवा कौलमार्गेवाधिकारि
णः । अत एव मेरुतन्त्रे चोक्तं
सर्वधर्मविहीना ये वर्णाश्र
मविवर्जिताः कौले वा वाम
मार्गे वा मुक्तिमुख्याश्च मा
नवाः । इत्यादि तथा च मेरु
क्तः प्रमाणे दक्षुक्त्या याद्रु
क्तमेवाधिकारिविशेषपरत्व
मिति; अतस्सूक्तं वामत
न्त्रं धर्मे न प्रमाणं धर्मबुद्ध्या
प्रणीतत्वाभावादिति, दुष्टज
नबुद्धिव्यामोहार्थं पक्षाश्रय
णात्, यत्तु शिष्टापरिग्रही
तत्वादिति, तत्त्वधिकारिभे
दपक्षाश्रयणादुक्तम्, यदुक्तं

सुरा मांसरेतोभक्षणादे र्विधायकत्वादिति तच्च मद्यमांसादिभक्षकै र्धूर्त्तैः प्रक्षिप्तमध्येति पक्षाश्रयणात्, एवं विषयभेद व्यवस्थया नाना हेतुकथनमतो नाधिक हेतु प्रयोगेऽधिक स्वरूप निग्रहस्थानम्। अस्तु तत्र शूद्रादीनामधिकारः शूद्रादि यवनान्तानां सिद्धिर्वा मप्यधेस्थितेति वचनात् वैदिकस्य ब्राह्मणस्य तु सर्वथैव नाधिकार सिद्धिः। नापि धर्म प्रामाण्यमागमतन्त्रस्य, पुराणन्यायमीमांसाधर्मशास्त्राङ्ग मिश्रिताः वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश इति धर्म प्रमाणके ष्वनन्तर्भावात्, तस्मा

न्नाकामत्वं वेदविरुद्धप्रमाणत्वं नापितत्स्मृतेः अनुभवत्व-स्यतत्रस्वीकारात् , पृ० ११ पं० १३। माहिंस्यात्सर्वाभूतानीति वेदवाक्यात्तभोवेण व्यभिचारादिति। अत्रयद्यपि कामत्वावच्छेदेनपक्षत्वाद्यभिचारस्यैतत्राभावः वौद्धादिभिरनुष्ठेयधर्मस्यहेतौरवृत्तित्वात् साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नसाध्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभाववन्निरूपितहेतुतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नहेतुतावच्छेदकावच्छिन्नवृत्तित्वस्यैवव्यभिचारत्वात् , तथापिबौद्धतन्त्रपक्षस्योत्थापनाद्वेदवा

वयान्तर्भावेण न तत्र व्यभि
चारः। बौद्धैस्त्वहिंसा परमो
धर्म इति बुद्धवाक्यादेवाव
धीयमानत्वात्, तस्य चानर्थ
र्थत्वम्, (चोदनालक्षणोऽ
र्थो धर्मः) अ०१ पा०१ सू०२ इति
जैमिनिना वेदप्रतिपाद्यस्यैव
धर्मत्वाभिधानात्, तद्धेतुप
क्षयोरपि भिन्नत्वेति न क्षु
ज्ञापि दोषः पदमादधाति, पृ०
११ पं०१३। सोऽहमिति प्रत्यभि
ज्ञेति अत्रास्माभिस्तु पक्षता
वच्छेदकावच्छेदेनानुमितिर
भिमता लघुनः पक्षतावच्छे
दकसामानाधिकरण्येना
नुमितिः चरके हेतावुपाधि
मुद्भावयतीत्यतो न दोषाव

काशः । अग्निमखासोऽक्रवेद
लादेशुद्धमतसाङ्कर्य्ये पूर्व
कोपाधिदोषोऽद्भवनं यद्यप्यु
क्तिनमूलमेव, तथाप्यधि
कतरशास्त्रीयसंस्कारराहि
त्यप्रकाशनाय बहुतरयु
क्तिकल्पेन प्रमाणेनोपाधि
दोषानुद्भवः । यद्युक्तमनेन
न्यायकुशलेन नित्यविज्ञानं
कारणं स्पन्दात्मकं कार्यंसो
हमिति प्रत्यभिज्ञामोक्ष
हेतुः शिवशक्त्यात्मकनित्य
विज्ञानस्य जगद्धेतुत्वेन शा
स्त्रिचक्रसन्धाने परमैश्वर्य
लाभादिबोधक शिवसूत्रप्र
त्यभिज्ञाकारिकानुसारिवे
दान्तिभिः संमते व्यासोक्तवे

दबादेपक्षेसाधनाव्यापक
त्वाच्चेति, तदत्यन्तस्यवीयः
बौद्धादिभिरबुद्धेयधर्मत्व
हेतोः शिवसूत्रप्रत्यभिज्ञास्त्रादि
ग्रन्थेष्वभावान्नास्तिकवाधप्र
मितत्वरूपोपाधेः साधनाव्याप
कत्वम् साधनवन्निष्ठाभाव
प्रतियोगितावच्छेदकधर्मव
त्वस्यैवसाधनाव्यापकत्वात्
नहीमेग्रन्थावौद्धानांयेनवेद
न्तिसंमते । प्रकृतेपक्षप्रतिज्ञा
दृष्टान्तानुपरोधात् । इतित्वे
न्नास्तिकवाद्यभाववदप्रमित
त्वाभावरूपोपाधेः साधना
व्यापकत्वंस्यात् तत्साध
नस्यैवाभावात्, अन्यथान
इत्यर्थम्, अनास्तिकवाद

प्रमितत्वमित्यस्यकस्यचित्प
रिडतस्य पाठे त्वकल्पितत्वप्र
कटनार्थेमंप्रसरिणवादीत्य
स्यसरणिकवादाभावचादित्य
कल्पयत्. अप्रमितत्वेत्यस्य
प्रमितत्वाभावेत्यकल्पयत्.
ज्ञायतेचानेनव्यर्थीकरणे
नकश्चिद्दूष्यो ऽस्यमार्गस्यो
पलब्धत्वं च प्रच्छन्नं बुध्वाय
त्किंचित्छलव्यपाशेन त्वना
म्नानुज्ञापितः प्रच्छन्नमार्ग
स्यप्रच्छन्नं ग्रन्थस्तमसङ्गतो ऽ
स्यव्यर्थीकरणात्ततोप्यस
ङ्गतम्. अतोन्यस्यास्य वा
ऽयंग्रन्थो नात्र विवादः ॥
प्रत्यभिज्ञासूत्रकारा वौद्धा जै
नाश्च. श्रीन्यायाचार्यैर्द

यनप्रणीताया: क्रियाकन्य
भूमिकायामुक्तम् येनेश्वर
प्रत्यभिज्ञासूत्रकारा: श्रीसो
मानन्दनाथशिष्यास्तत्रभवन्तोऽवि
वा: तथोक्तम् जनस्यायत
सिद्धर्थमुदयाकरसूनुना ई
श्वरप्रत्यभिज्ञेयमुत्पलेनोपपा
दिता इत्युक्तवन्त: अपिवे
श्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिन्यादि
टीकायामुत्पलदेवप्रणीतया
ऽस्मारमुपनीयाः ४११५
तमे कलिवर्षे वर्त्तमाना अभिन
वगुप्ताचार्याः। आद्ये श्लोके
श्रीवैयम्बकसत्त्विनुषमुत्तौ
मयस्थिते: श्रीसोमानन्दना
थस्यविज्ञानप्रतिबिम्बकम् ॥१॥
श्रनुसारतरःनयसमाहितपुनर्योगा

समन्वयात् ईश्वरप्रत्यभिज्ञा
ख्यं यः शास्त्रं यत्सुनिर्मितम् २
तत्शिष्यः करोत्येतां तत्स्वत्ववि
वृत्तिं लघ्वीम् कुर्वाभिनवगुप्तो
हं श्रीमल्लक्ष्मणगुप्ततः ३ ई
त्युक्तवन्तस्ते परात्रिंशिकातत्व
विवृत्या तन्त्रालोकविवेकादि
ग्रन्थेभ्यः काश्मीरदेशीयाद्
त्यवगम्यन्ते, कथं पुनस्तं सुधै
र्विभ्रान्तो बौद्धादिभिनुष्ठेयत्त
हेतुन अमन्यते; अतः साध
नाव्यापकत्वभावनाशरीरक
द्वाद्य प्रमितत्वमुपाधिरितिभावः
अन्यत्किंचिदीश्वरप्रत्यभिज्ञो
पदेशात्तत्वं निरूपयामः । प्रत्य
भिज्ञा हृदये सूत्राणि प्रदर्श
तोशिवसूत्राणि च * विति:

स्वतन्त्रा विश्वसिद्धिहेतुः ॥ अ
स्यार्थः। विश्वस्य सदाशिवादेर्भू
म्यन्तस्य, सिद्धौ, निष्पत्तौ,
प्रकाशने स्थित्यात्मनि पर प्र
मातृ विश्रान्त्यात्मनि च संहा
रे पराशक्तिरूपा चितिः, भग
वती स्वतन्त्रा अनुत्तर विमर्श
मयी हेतुः। कारणम्, अस्यां
प्रसरन्त्यां जगदुन्मिषति व्यव
तिष्ठते च, अन्यस्य तु मायाप्र
हत्यादेः। चित्प्रकाशाभिन्नस्य
अप्रकाशमानत्वे नासत्त्वात् न
क्वचिदपि हेतुत्वम्, प्रकाश
ने तु प्रकाशैक्यात् प्रकाशरूपा
चितिरेव हेतुः। न त्वसौ कश्चि
त्, अतएव देशकालाकारा
एतत्सृष्टा एतदनुप्राणिताश्च

नैतत्स्वरूपंभेत्तुमलमितिव्यापक
नित्योस्तिपरिपूर्णरूपेयमित्य
र्थलभ्यमेवैतत् ननुजगदपि
चितोभिन्नंनैवकिंचित्, अभे
देचकथंहेतुहेतुमद्भावः उच्यते
चिदेवभगवतीस्वच्छस्वतन्त्र
रूपातदनन्तजगदात्मनास्फु
रति इत्येतावत्परमार्थरूपो
यंकार्यकारणभावः। यत
श्चेयमेवप्रमातृप्रमाणप्रमेय
स्यविश्वस्य, सिद्धौ, प्रका
शनेहेतुः ततोऽस्याः स्वतन्त्रा
परिच्छिन्नप्रकाशरूपायाः।
सिद्धौ अभिनवार्थप्रकाशन
रूपंनप्रमाणवराकमुपयुक्तमु
पपन्नंवा अथविश्वस्यस्वरू
पंविभागेनदर्शयितुं, तृतीय

सूत्रम् ॥ तन्नानाऽनुरूपग्राह्यग्राहकभेदात् ॥ तत् विश्वं नाना अनेकप्रकारम् अनुरूपाणां परस्परौचित्यावस्थितीनां ग्राह्याणां ग्राहकानां च भेदात् वैचित्र्यात्, अथैश्वरोविश्वशरीर इत्याह, चतुर्थसूत्रेण, चितिसंकोचात्माचेतनोऽपिसंकुचितविश्वमयः ॥ श्रीपरमशिवः स्वात्मैक्येनस्थितं विश्वंसदाशिवाद्युचितरूपेणावबिभासयिषुः पूर्वंचिदैक्याख्यातिमयानाश्रितशिवपर्यायशून्यातिशून्यात्मतया प्रकाशाभेदेन प्रकाशमानतया स्फुरति ततश्चिद्रसाश्यानरूपाशेषतत्त्वभुवनभावतत्तत्प्रमात्रात्मतया

पिप्रथते यथाचायंभगवान
विश्वशरीरः तथाचितिसंको
चात्मासंकुचितचिद्रूपः चेत
नोग्राहकोपिवटधानीवत्संकुचि
ताशेषविश्वरूपः ननुग्राहको
ऽयंविकल्पमयः विकल्पनंच
चित्तहेतुकंसचित्तचित्ते कथम
स्यशिवात्मकत्वमित्याशङ्क्य
चित्तमेवनिर्णेतुमाहपञ्चमसू
त्रेण ॥ चितिरेवचेतनपदाद
वरूढाचेत्यसंकोचनीचित्तम् ॥
५ नचित्तंनामान्यत्किंचिद
पितुसैवभगवतीतत् तथाहि
सास्वंरूपंगोपययित्वायदासं
कोचंगृह्णातितदाद्वयीगतिः
कदाचिदुल्लसितमपिसंकोचंगु
णीकृत्यचित्प्राधान्येनस्फुरति

कदाचित्संकोच प्रधानतया चि
त्प्राधान्ये पक्षे सहजे प्रकाशमात्र
प्रधानत्वे विज्ञानाकलता प्रका
शपरामर्श प्रधानत्वे तु विद्याप्रमा
तृता तत्रापि संकोचस्य तनुतायां
ईशसदाशिवानाश्रितरूपता
समाधिप्रयत्नोपार्जिते तु चित्प्र
धानत्वे शुद्धाध्वप्रमातृता क्र
मात्प्रकर्षवती संकोचप्राधा
न्ये तु शून्यादिप्रमातृता एवम
वस्थिते सति चितिरेव संकुचित
ग्राहकरूपा चेतनपदादव
रूढा अर्थग्रहणोन्मुखी सती
चेत्येन, नीलसुखादिना, संको
चिनी, उभयसंकोच संकुचिते
वचित्तम् स्वातन्त्र्यात्मा चिति
शक्तिरेव ज्ञानक्रिया मायाशक्ति

रूपापसुदृशायां संकोचप्रकर्षात्
सत्वरजस्तमः स्वभावचितात्म
तयास्फुरति इत्युक्तं प्रत्यभिज्ञा
याम् ॥ अथप्रत्यभिज्ञाकारिका
यामप्युक्तम् ॥ तदेवंव्यवहारे
पिप्रभुर्देहादिमाविशन् भातमे
वान्तरर्थौघमिच्छयाभासयेद्ब
हिः १ व्युत्थानप्रशान्तभेदा
वभासंभवतीत्याह, शक्तिचक्र
सन्धानेविश्वसंहारः ६ इदंच
शिवसूत्रम्, ईश्वरस्यैवान्तर्लो
ल्पवहिर्देहात्मतयानिःशेष
शक्तिचक्रक्रमाक्रमाक्रामि
णीअतिक्रान्तक्रमातिरिक्ता
नतिरिक्ततदुभयात्मतयाप्य
भिधीयमानाप्यनेतद्रूपा अ
नुत्तरापरास्वातन्त्र्यशक्तिः का

याप्ति यथास्वमितौ मतुला
सा स्त्रमतिपरविम्श स्यनंश्री
मत्स्य स्यादि शक्ति चक्रस्फार
णात्मा क्रीडेयमादर्शितालसे
तदाभासितस्य शक्तिचक्रे
स्वरहस्याम्नातरीत्या यत्सन्धा
नं यथोचितक्रमविमर्शनमः
तस्मिन्सति कालाग्न्यादेश्चर
मकलान्तस्य विश्वस्य संहा
रोदेहात्मतया बाह्यतया चाव
स्थितस्यापि सतः परसम्विद
ग्निसद्भावो भवत्येवेः। शक्ति
चक्रक्रमाक्रमौ किमिति चे
च्छृणु क्रमः सृष्टिस्थितिसंहा
राणामाभासविच्छेदनस्वभावः
अक्रमो युगपत्तेषामवभासः
तौ क्रमाक्रमावाक्रामतीति·

क्रमाक्रमाकामिनी, तयाचो-
क्तम्, क्रमत्रयसमाश्रयव्य
तिरेकेणालं क्रमनितय
लङ्घनं विदधती विभात्यु
च्चकैः क्रमैकवपुरक्रमप्र-
कृतिरेवया शोभते करोमि-
हदितामहं भगवतीं परांस-
म्विदम्, इति सृष्ट्यादिक्रम
त्रयरूपतामवभासयन्त्यपि
तदतिवर्तनेन परिस्फुरन्ती
क्रमाक्रमवपुः परैवानाख्या
पारमेश्वरी सम्वित्परास्रष्टा
भवतीत्यर्थः, शक्तिचक्रस्य
सृष्ट्यादिक्रमः। तस्य सन्धान
ञ्च पूर्वोक्तप्रकारेण विमर्श
इति भावः। अथवेदान्तिसं
मतव्याख्येनेन बुद्धसमन्त

सक्षणि का सम्बादस्यासाङ्

कथ्यि ज्ञापनाय प्रदर्शितसू

त्रस्य भाष्यं प्रदर्शयामः । प्रकृ

तिश्चोपादान कारणं च ब्रह्मा

भ्युपगन्तव्यं निमित्त कारणं

च न केवलं निमित्तकारण

मेव, कस्मात्प्रतिज्ञा दृष्टान्ता

नुपरोधात्, एवं हि प्रति

ज्ञा दृष्टान्तौ श्रुतौ नोपरुध्ये

ते, प्रतिज्ञा तावत्, उत त

मादेशमप्राक्ष्यो येनाश्रुतंश्रु

तं भवत्यमतं मत मविज्ञातं

विज्ञातम्, छान्दो० ६।१।३।

तत्र चैकेन विज्ञातेन सर्वम

न्यद विज्ञात मपि विज्ञातंभ

वतीति प्रतीयते, तच्चोपा

दान कारण विज्ञाने सर्ववि

ज्ञानं सम्भवत्युपादान कारणा
व्यतिरेका त्कार्यस्य निमित्त
कारणाव्यतिरेकस्तु कार्यस्य
नास्ति, लोके तक्षाः प्रासाद
व्यतिरेक दर्शनात्, इहान्तो
पि यथा सोम्यैकेन मृत्पिण्डे
न सर्वं मृन्मयं विज्ञातं स्यात्,
वाचारम्भणं विकारो नामधे
यं मृत्तिकेत्येव सत्यम्, इत्यु
पादान कारणगोचर एवाम्ना
यते, इत्युक्तं शाङ्करे, इत्य
त्र चेतनं नित्यविज्ञानरूपं ज
गतः कारणमिति कार्यं जग
तोऽभिन्नत्वात्कारणं नित्यवि
ज्ञानरूपम्, न चात्र बौद्धादि
भिरनुक्षेपधर्मत्वहेतोर्विनि
त्वत्वं तद्भावान्न साधनाया

पकलमक्षणिकवादप्रमि
तत्वरूपोपाधेरिति भावः। द्व
ष्ट्यमस्यन्यायतत्वाभिज्ञस्य
म्, यतः पक्षमात्रएवोपा
धेः साध्यव्यापकत्वं साधना
व्यापकत्वञ्चकृते, तन्मा
त्रस्यैवानेन पक्षीकरणा द
ग्निर्नैवोपाधेः प्रदर्शितुमश
क्यत्वात्, किंच यत्र बौ
द्धादिभिरनुमेयधर्मित्वं क्ष
णिकत्वाभावादेतन्नाक्षणि
कवादिभिः शाङ्कराचार्या
दिभिः प्रमितत्वम्, तस्मा
साधनाव्यापकत्वान्नोपा
धिरिति, नापीदं मतं बुद्ध
स्य यत्किञ्चिदविज्ञप्तिमात्रं:
तेन क्षणिकविज्ञप्तिमात्र

स्य स्वीकृतत्वात्, अतएवा
र्थासंस्पर्शं नित्यविज्ञप्तिमात्रं
साधयद्भिः श्रीगौडपादाचा
र्यैर्माण्डूक्यकारिकायामु
क्तम्, क्रमते न हि बुद्धस्य
ज्ञानं धर्मेषु तायिनः। सर्वे
धर्मास्तथा ज्ञानं नैतद्बुद्धेन
भाषितम्, अतो व्यालोके
वेदवादे पक्षे बौद्धादिभि
र्नुक्षेयधर्मत्वहेतोरभावा
त्कासानुपाधिहेत्वाबितः।
लक्षणसङ्गमनाभावान्नो
पाधिस्सम्भवतीत्यलमस्य
स्वचक्षुषी निमील्य जग
दन्धमवपश्यतः शशकस्य
स्वभावमनुसरतो वञ्चकतरबौ
द्धापनेनेति ॥ पृ० १२ पं० १

लेखनशैलीदृष्टया क्वचिद्बुद्ध
उवाचेति शब्दमात्रघटितत्वेनन
बुद्धप्रणीतत्वमित्येवमितिपद
घटितंवद कथंबुद्धउवाचेति श
ब्दमात्रघटितत्वमितीतिपदर
हितंवदसि किञ्चकेनेयंव्या
प्तिर्गृहीतायत्रबुद्धउवाचेतिश
ब्दघटितत्वंतत्रबुद्धप्रणीतत्व
मिति येनैवंप्रतिपाद्यते त्तु
हिश्रुतंगर्तसंदंयुवानमित्यन्यै
स्त्रिभिरथर्वर्णादिमन्त्रैरागान्ब
तुर्थेशे: किंतेप्रयोजनमसि
द्धम् नाप्येषांभाष्यप्रदर्शनपु
र: सरंस्वविषयेसमन्वय: कृत:
किंपाठवेलस्सर्पदष्टेवोद्भूता:
किंचसर्वेषांवेदानांप्रणीतत्वस्य त
स्यैवबुद्धेनोपदेशइतिसिद्धान्त

इति अत्रप्रणीत स्यैवंवद
कथंप्रणीतत्वस्येत्युच्यते नाय
मेतद्विजानातीत्येतत् प्रत्यया
न्तस्यप्रयोगे ऽथैमहदन्तरम्भव
तीति इदमेवन्यायशास्त्राभि
ज्ञत्वं मन्यते यत्त्वतः ऽत्र पदप्रयो
क्तृत्वम् पृ· १२ पं· १४ अन्यद
प्यस्यासम्बद्धकथनन्द्रष्टव्यम्
अस्य महतोभूतस्यपरमात्मनो
निःश्वसितावेदाः स्वशिष्येभ्योबु
द्धेनोपदिष्टान्नतु तेन स्वयंप्रणीताः
यथामनूपदिष्टस्य भृगुणोपदे
शेऽनन्नतु भृगुणा स्वयंप्रणीत इत्य
नेनतु प्रणीतत्वस्यासिद्धिर्द्योति
ता अयच्चबौद्धादिभिरनुष्ठान
स्यसाधयितुमशक्यत्वेनेतिवद
न् बौद्धादिभिरनुष्ठेयत्वहेतोः

स्वरूपासिद्धिमुद्भावयति किंच
पूर्वबौद्धाद्यनुष्ठानस्यसाध्यत्वे
नुनरवाक्यत्वादित्युक्तं पुनरग्रेतर्हि
तद्धस्प्रतिज्ञातंबौद्धानुष्ठितानि
तच्छास्त्राणि बुद्धप्रणीतत्वादिति
अन्यच्चबुद्धोपदिष्टं यदि बौद्धैर्ना
नुष्ठितन्तद्धुपदेशोव्यर्थः स्यात्
पृ. १२ पं. १८ बौद्धानुष्ठितानित
च्छास्त्राणि बुद्धप्रणीतत्वादित्यनुमा
नप्रयोगेहेतोरसिद्धत्वादिति, अहो
अस्यमुखविवराच्छीघ्रं किंनिर्निः
सरति, अहोन्यायाभिज्ञत्वंम् ने
दृशंप्रतिज्ञावाक्यं कश्चिदनानुम
तश्रावसीत तच्छत्वावच्छेदेन
बौद्धानुष्ठितत्वस्यसाध्यस्याभाव
त् किंतु बुद्धतन्त्रत्वावच्छेदेना
नसाध्यसिद्धिः तथाचबुद्धप्रणी

तत्वस्यतत्त्वसत्वान्नरूपाति
द्धि: अत्रापिबुद्धतन्त्रंबौद्धानु
ष्ठितंबुद्धप्रणीतत्वादितिबुद्धस्य
वञ्चकत्वाभिप्रायेणोक्तम् त
थाचबौद्धैरल्पबुद्धिभिर्दैत्यादि
भिस्तान्त्रिष्यैरनुष्ठितत्वात् व
ञ्चकबुद्धप्रणीतत्वाच्चनप्रमाण
मितिभाव: किंचसम्प्रतिवाम
मार्गबद्धुद्धमार्गमपिहिततमंमन्य
सेकिंसर्वेनिषिद्धमार्गाः शिष्टग
र्हितास्त्वयैवस्वीकृताः किंचदन
तन्त्रमपिधर्मेकदाचित्स्वीकरि
ष्यसि पृ०१२ पं०३॥ नास्ति
कबौद्धानुष्ठीयमानत्वसाधनेहे
तोः साध्याभावव्यापकत्वेनवि
रोधश्चेति अत्रकृष्णवंनिर्मू
लत्वेनगणनकुसमायमानम

पार्थकमभिधानमस्याज्ञानतिरो
हितञ्चेतनाशक्तिकस्यप्रथमतो
बुद्धानुष्ठितानितन्त्राणिबुद्धप्र
णीतान्यादित्यत्रप्रतिक्षेपकेना
पिस्वीकृतानापिसाऽसंभवति त
न्त्रमात्रस्यबौद्धानुष्ठितत्वाभावा
त् किंचतन्त्रेबौद्धानुष्ठितत्व
मपिनास्तियस्माच्चेतन्त्रप्रतिपाद्य
क्रियायामेवनतुतन्त्रमेवानुष्ठेयं
भवतीति हन्तभोः अष्टादश
भेदभिन्नाबौद्धाः सर्वेनास्तिका
स्तेषाम्नः श्रुतेरप्रामाणिकत्वं नास्ति
कबौद्धानुष्ठीयमानत्वसाधनमिति
नास्तिकत्वं विशेषणेन विशेष
यन्नास्तिकबौद्धानपिस्वीकारोधी
तिप्रतीयते किंपूर्वानुमानेचश्रौ
तस्वभावे आस्तिकबौद्धत्वं

स्वास्मिन्नभ्युपगच्छसि अहो हास्यास्पदमभिधानं विदुषाम्
पृ. १२ पं. ४ सगिकात्मसिद्धान्त कत्वं आस्तिकानभ्युपगतत्वं वोपाधिरिति ॐ इदंचोपाधिद्वयोद्भावनन्तर्कशास्त्रतत्त्वानभिज्ञत्वं व्यनक्ति प्रथमतोऽत्रप्रतिज्ञात्वस्यैवाभावः अभ्युगम्याप्युपाधिस्तुनसंभवति साध्यंचवौद्धानुमितत्वं हि क्रियायां नतत्र सगिकात्मसिद्धान्तकत्वम् तच्च सगिकात्मनिस्यात्तस्मिन्नास्तिके पुरुषे वानतुसगिकक्रियाया म् तथाचसाध्यव्यापकत्वाभावात् कथमुपाधिरिति बुद्धप्रणीतत्वं बौद्धतन्त्रेणुतआद्युभयोरुपाध्योः सत्वात्साधनव्याप

कत्वमेवद्वयोरितिसाधनाव्याप
कत्वाभावान्नोपाधिद्वयंसंभवति
पूर्वकालिककुस्थिकल्पनाया
मप्युपाधिद्वयोर्न हेतोसंभवः य
द्यपियत्रप्रमाणत्वाभावस्तत्रस्व
णिकात्मसिद्धान्तकत्वं ऽप्यास्ति
कानभ्युपगत्वंचेतिसाध्यव्यापक
त्वम् तथापियत्रबौद्धादिभिस्तु
ह्येयत्वन्तन्मतेनतत्राप्युभयोः
सत्वमितिसाधनस्यापिव्यापक
त्वान्नोपाधिद्वय संभवः नह्य
यमर्द्धजरतीन्यायोऽभ्युपेतव्यो
यद्धिबुद्धकृतवेदादिसर्वाप्रम
खण्डनमभ्युपगन्तव्यम् अत्र
वतत्प्रणीतत्वमभ्युपगन्तव्य
मिति एतादृशाभिप्रायेणोपाध्यु
द्भावनन्तुपूतिकूष्माण्डायितमेव

इत्यलोऽयं वेनोपमेयं इतिन बिजा
नीम:। श्रीबुद्धस्य भगवद्रूपत्वेपि
तद्वाक्यमग्राह्यमेव धर्मबुद्ध्या
प्रणीतत्वाभावादिति कुमारिल
भट्टपादैः शाबरभाष्येतन्त्रवार्त्ति
कभाष्यमाणोर्बहुभिर्युक्तिकला
पैः साधितत्वात् तस्मान्नबुद्ध
शाक्यादि स्मृतिवाक्यैर्धर्म्मोग्राह्यः
श्रीभगवतो निःश्वासत्वं बुद्धतन्त्र
स्यास्तु श्रीभगवान्निःश्वासएवा
नादिप्रवाह सिद्धोग्राह्यः। नतूत्तर
स्यनिः श्वासस्यग्राह्यत्वं वञ्चना
र्थं दर्शितरूपेण निःश्वसितत्वात्१
पुराणेतिहास प्रसिद्धमेतत्२ यदि
पुण्यांगतिमिच्छसि तर्हि नबाभ बु
द्धादि वाक्यं विश्वसिहि तत्र पुराणे
तिहास प्रमाणेः प्रतारकवाक्यत्व

निश्चयादिति भावः। पृ० १३ पं०
१४। वामं शोभनदुष्टयोरिति
कोशेन शोभनमार्गीयत्वादि-
ति,, अत्र दुष्टस्वरूपार्थोऽस्मि
न्मतेन तथा च दुष्टमार्गीयत्वा
दित्यर्थः। दुष्टत्वमप्यत्र किंचि
च्छास्त्रमन्यच्छास्त्रीयविध्यति
देशस्य पूर्वसाधितत्वान्नावि
शेषणासिद्धेहेतुरिति,, पृ०
१३ पं० १८। वामोदुष्टोऽवैधस्तु
रामांसादिघटितत्वादितिहे
तुः। अतो न वैधमद्यवैदिक
मार्गस्य विचारः। सौत्रामण्या
दौ ज्योतिष्टोमे च वैधैर्वामकेऽस
मैव[पि] पीयते। अतो विशेषवा
क्यविहितत्वात्सामान्यवाक्य
प्राप्तनिषेधकेभ्यः प्रबलते

𑆤𑆤𑇀𑆢𑆼𑆩𑆾𑆤𑇀𑆩𑆼𑆑𑇀𑆰𑆂𑇅 𑆠𑆢𑆤𑇀𑆠𑆴 𑆫𑆴𑆩𑆼𑆣
𑆓𑆼𑆥𑆴𑆤 𑆮𑆴𑆣𑆴𑆂 𑆑𑆴𑆤𑇀𑆠𑆶 𑆤𑆢𑆾𑆩𑆼𑆣
𑆑𑆾𑆢𑆼𑆢𑆑𑆳 𑆤𑇀𑆪 𑆱𑇀𑆪𑆼𑆑𑆳𑆨𑆳𑆮𑆂𑇅 𑆠𑆱𑇀𑆩𑆳
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
𑆠𑆴 𑆥𑇀𑆫𑆑𑆾 [illegible]

नैवेद्यमिति प्रशंसार्थमे
व तदुक्तम् । अनर्थवत्स्व
रो लक्षणमथः अन्यस्य
यस्माद्धितिबुधैः । येचाग्र
लगाद्योरेतिगलदर्थम
नोपधेरमिथानास्तुं पुनी
यतेचापरुलादिरेतिनोऽर्थ
नेवहुलपाअस्तलत्वामिथान
म० १० १८पं०१ । आम्नलाय
नेमादाम्नाय २अ० ५कं० ५२
तिलक्षेपुराद्गोनोकेष्वेति०
अहोलेखनधौती, किंत्वोः ।
अक्तानैवदक्षणिमन्वसे
यतस्वयैगन्धानेवोधरसि
नैवेद्यविधयंसिद्धाधि
षासि, किंमाद्धि हेमध्वे
कमधुनीति आता, तथो

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] ॥ पृ० १४ पं० [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] ॥ पृ० १४ पं० १३ [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

विधिः शतपथादिब्राह्मणग्र
न्थेषु, किन्त्वब्राह्मणादी
नामपि यज्ञकर्मण्यधिकारो
ऽस्ति हि तत्तत्स्थानेष्वरूपादि
ष्टे हेतुरिति,, पृ० १४ पं० १७।ओ
ऽथ हेतुर्विचारेऽधिकं वक्ष्या
म इति,, यत्त्वमधिकं वक्ष्य
सि वयमपि तस्मै बलिर्भवामः
पृ० १४ पं० १७। मांसपदे न लिखे
नोक्तं मांसत्वं किमिति,, अत्र मां
सस्यानिर्वचनात् किन्ते सिद्धं
ति किमपि नो-च्चलितं
मांसस्य भक्ष्यत्वे स्यात्,
तद्योगमतमनिर्बो-ध्य लोकान्
ङ्घ्रा-चसर्वस्यापि पदस्यानि
र्वचनमाधाकार्येत्वादनि
र्वचनत्वम्, तत्प्रमलम्न

घोरस्य निर्वचनाद्भयोऽस्य
विषयत्वप्रसक्तिः। किंच त्वमेव घ
टादि निर्वचनं कुर्वीति, नोचेत्
किमस्यैव निर्वचनं जिज्ञाससे
न कोऽपि पदार्थस्तादृशो निर्व
चनीयः स्यात्, अथ कोऽयं घटो
नाम यं निर्वचनार्हं मन्यसे, न
नु घटघटत्वकम्बुग्रीवादिम
त्त्व घटशब्दवाच्यत्वादिधर्म्मा
श्रयो घट इति चेन्न शब्दमा
त्रस्याप्युक्तवचनमिवासाधक
त्वात् सर्वेतरविविक्तत
या प्रदर्शने तु प्रमेयत्वादि
साधारणरूपेण कस्यचित्
सिद्धिरिति भावः। ननु कपा
लाद्यवयवविशेष इति
चेन्न किमेतद्घटं कपाल

घटयोरवयवावयवित्वसम्ब
न्धादि प्रतिपादनपरम्, किं
वा घटस्वरूपप्रदर्शनपरम्;
आद्ये प्रश्नानुत्तरं घटस्वरूप
स्यैवपृष्टत्वात्, द्वितीयेतु
नावयवावयवित्वादयो घ
टसम्बद्धा अवयवित्वेन प्र
तीतेरवयवसापेक्षत्वेन स्व
स्वरूपायोगादित्यर्थः। एतद
न्यद्घटस्वरूपं वाच्यम्, वि
शिष्यवक्तुं न शक्नोमीति चेत्
तदनिर्वचनाशक्तौ किं का
रणम्, अननुभूयमान
त्वान्न शक्नोमि निर्विशेष
त्वाद्वा, नाद्यो घटस्वरूप
स्य जलाद्याधारस्य सार्व
जनीनानुभवसिद्धत्वात्

द्वितीयेपि वक्तव्यं यन्निर्विशे
षरूपं तज्ज्ञातमज्ञातं वा, ना
न्त्यो बुद्ध्यनारूढस्वभावपदा
र्थस्यापादयितुमशक्यत्वेन
तद्व्यवहारलोपः स्यात्, नाद्यो
भ्रमाभ्युपगतत्वे तो वा प्रमाणा
द्वा, अत्रापि नाद्यः पक्षः। भ्र
मविषयस्योत्तरकाले बाध्य
त्वात् सविशेषत्वप्रसक्त्या नि
र्विशेषत्वाभावः स्यात्, तथा
च कथमुक्तं निर्विशेषत्वाद्व
क्तुं न शक्नोमीति, न द्विती
यः। स्वप्रकाशसिद्धतद्रूपस्य
घटस्यापि तथात्वेन प्रमाणवै
यर्थ्यापत्तेश्च, न तृतीयो नि
र्विशेषत्वव्याघातात्, न हि नि
र्विशेषं वस्तु मानान्तरविष

यः समवैतीति, चक्षुरादेः सा
र्वलौकिकस्य प्रमाणस्य स
विशेषवत्त्वविषयत्वनिय
मात्, अथ कपालसमवेतो
घटस्तर्हि कपालरूपेऽपि
प्रसक्तिः स्यादतोऽवयवी
ति पदं निवेशितम्, शरावेऽ
ति प्रसक्तिवारणाय विशे
षेतिपदम्, किं च घटोऽवय
वी कपालावयवो भिन्नोऽ
भिन्नो वा, नाद्योऽभेदेना
श्रयाश्रयिभावानुपपत्तेस्त
तोऽवयवाश्रयोऽवयवीति
व्यवहाराभावः स्यात्, ना
न्त्यो भेदेऽपि भिन्ने धर्मिण्य
भिन्नो वा, नाद्योऽभिन्नो
दसत्वेऽनैव भिन्नत्वाद

भिन्नत्वमाप्नोति भेदप्रतीति
र्भिन्नत्वस्यात्। नाप्नोति
नोपि केन भेदेन घट भेदेन
घेत्व प्रिय लो घायेद्य त्वेना
माभ्रबोदो षस्त्यात् पटभे
देन वेलो पिभिन्ने घर्भिघय
भिन्ने वा। नाप्नोऽभिन्ने भेद
मलेमाघातो भमत्वंचनाद
वस्थानात्। नाप्नोति नाम
भेदवान् भेदवत्वात्के न भे
देन ल्वेनोचि नत्वा नाशवः।
घटभेदेन वेदयोमाभ्रवः
कुल ल भेदेन वेलो पिभि
न्ने लोका र्थलघाचन माघे
हे लेभेद वेदनाप्नो। हेती
भेनवेदनो नाशयः अवि
नवेदन कानवृत्ते भेदन

वस्येतिस्मार्तीपुलाकन्यायेनस
र्वस्याप्यनिर्वाच्यत्वम्, अस्ति
चेदाग्रहस्तर्हिश्टणुयत्किंचित्
मांसत्वंच मांसपदवाच्यत्वं परे
चमांसवाचकत्वन्नच मांसत्वा
वच्छिन्नविषयितसम्बन्धाव
च्छिन्नप्रकारतानिरूपितबोध
त्वावच्छिन्ननिष्ठविषयतानि
रूपिताश्रयत्वसम्बन्धावच्छि
जनकतात्वावच्छिन्नप्रकारतानि
रूपितेश्वरेच्छीयविशेष्यताश्रय
त्वं मांसत्वावच्छिन्नवाचकात्वम्
मांसपदस्यमांसंवाच्यमित्यत्र
मांसपदनिष्ठायाबोधजनक
त्वप्रकारतानिरूपितेश्वरे च्छी
य विषयतातन्निरूपकजनक
त्वनिष्ठविषयतावच्छिन्नवि

षयतानिरूपकबोधनिष्ठविष
यतानिरूपकविषयत्वसम्बन्धा
वच्छिन्नविषयताश्रयोमांसम्,
द्वितीयव्याख्यानन्तु मांसपदजन्य
बोधविषयत्वप्रकारकेच्छीयवि
शेष्यताश्रयोमांसम्, तथाच
तादृशविशेष्यतानिरूपकविष
यत्वनिष्ठप्रकारतावच्छिन्नवि
शेष्यताकबोधनिष्ठप्रकारता
वच्छिन्न विशेष्यतानिरूपक
जन्यत्वनिष्ठप्रकारतावच्छिन्न
विशेष्यतानिरूपकनिरूपित
त्वसम्बन्धावच्छिन्नप्रकारता
श्रयोमांसम्, इदमेवमांसस्य
मांसपदवाच्यत्वम्, भवदुक्तरी
त्यानिर्वचनेचबहुतरमनिष्टंप्र
सज्यते, किंमांसत्वंप्राणयङ्ग,

विशेषणमितिचेदितिवदन् प्र
ष्टव्योऽयं स्थूलदृष्टिः । हन्तभोः ।
किं प्राणोऽयं मन्यते? प्रा
णोऽनुजीवरूपतया केनाप्यङ्
ऽभिमतम् प्राणसम्बन्धि
नो देहस्याङ्गत्वमभिमतान्यासि
क नास्तिकसाधारणोऽस्तु पुनः
प्राणङ्· विशेषणत्वं तवोऽस्तिकत
न्नेतिहेतुं वदन् प्रत्यर्थिनं
ऽस्वभावाञ्छ्राखगच्छस्या
न् स्वतोऽयत्न्यु विद्यावालम्
प्राणसम्बन्धिनो देहः काम
मङ्· बलोऽभवन्तु प्राणीत्यमूर्तः
पदार्थत्वस्याङ्· मेवनघटते
यतु न्यायवार्त्तिकतात्पर्यटी
कायामागमविरुद्धकापालि
कानुमाने नरशिरः कपालं

श्रुतिः प्राण्यङ्गत्वाच्छुद्धं खल्व
स्थिवदित्यत्र शिरः कपालस्य
प्राण्यङ्गत्वमभिहितन्तदपि
लक्षणाहृत्या प्राणिसम्बन्धि
देहाङ्गाभिप्रायेणैवेतिनतद्द
ध्ययम्, जीवप्राणधारणे, इत्य
नुशासना जीवधातो जीवति
प्राणान् बिभर्तीति प्राणधा
रणेनैव जीवेतिसङ्केतिभावः
किं चास्तुतदपितथापिन श्री
ह्यादेर्मांसत्वापत्तिः। शरीरा
णितु चतुर्विधानिसर्वतन्त्रसिद्धा
निजरायुजाण्डस्वेदजोद्भिज्जभेदा
त् शरीरत्वंचान्यावयविस्वे
सतिचेष्टाश्रयत्वम् ननुशरीर
त्वंजातिरेवेतितद्यदिशरीरेषि
पार्थिवजातिविशेषस्तदामम्बे

शायत्रोद्दन्ने विनाश्य चोलने घ
टादौ क्रियेत्यत्रिस्तत्रापि मन्त्रो
णघटश्चेष्टत इति प्रयोगान्नादृश
जातेरङ्गीकरणीयतया घटत्वमा
दाय घटादावतिव्याप्तिः यदिश
रीरक्रियात्वन्तदा लाभ्यस्त्या
सितेचेन्नैंहितप्राप्ति परिहारार्थ
क्रियाचेष्टेति लक्षणस्वीकारात्
अन्यथा सान्दन मात्र मादाय
घटादावतिव्याप्तिस्स्यात् अ
चेष्टत्वं च सावच्छिन्नैरूप्य विषय
त्वन्तेन न घटादि क्रियायाश्चापि क
स्यचिदिष्टानिष्ट प्राप्ति परिहार
नुकूलत्व संभवेपि घटत्वादिक
मादायातिव्याप्तिः तथाचेष्टि
मांसत्वमिति दिक् इत्युत्तर
शरीरसम्बन्धि जरायुजाण्डज

हित ...

स्वेदजशरीरावयवविशेषत्वंमां
सत्वमितिनकुत्रापिदोषः उ
द्भिज्जस्यान्नग्रहणान्नव्रीहियवा
दिसाधारणयम् व्रीहियवापा
दायदोषस्तुत्वदीयकुसृष्टिकल्प
नायामपिनास्ति किम्पुनरत्र
त्वयिदोषोद्भावनसामर्थ्याभावा
त्, किंचएतद्व्यवहारस्यश
क्तिग्राहकत्वात्, यदाहिगु
रुर्ज्येष्ठशिष्यमाज्ञापयतिमे
देवीपुत्र, उच्छिष्टचाण्डाल्यै
बलिदानायमांसमाहरमद्यञ्चानय
इतितेननियुक्तः सञ्चानीयचोभ
यमाहहेश्रीगुरो ! आनीतमि
दंमांसमिदंमद्यञ्चेतितदवधा
र्यपार्श्वस्थः कनिष्ठः शिष्यः
शक्तिंगृह्णाति जरायुजादिदेह

वयवोमांसपदवाच्यः तथापि शादिवाक्यसंपादितजलविशेषो मद्यपदवाच्य इतिनिश्चिनोति इत्येवंयत्रव्यवहारस्तत्रैवमांसम द्यञ्चेति अनेनव्रीहियवादौमां सत्वापत्यर्थं जीवप्रवेशो छान्दो ग्यश्रुतिरूसाहूता तदर्थंशारीरक भाष्यानुसारेणालोच्यताम: स वंपापिनांगत्यागती विचार्य्य स म्पातीष्टादिकारिणामवरोह वि शेषमाह (साभाव्यापत्तिरूपप त्तेः अ॰ ३ पा॰ १ सू॰ २२) इ ष्टादिकर्मकारिणांप्रेत्यधूममा र्गेणाचन्द्रलोकमारूढानां तत्र यावत्कर्मफलंभुक्तंभोगानीत तः सानुशयानां अथैतमेवा ध्वानंपुनर्निवर्त्तन्ते यथेतमा

काशमाकाशाद्वायुंवायुर्भूत्वाधू
मोभवति धूमोभूत्वाऽभ्रंभवत्य
भ्रंभूत्वामेघोभवतिमेघोभूत्वाप्र
वर्षतितइहव्रीहियवाइत्यादि
नापुनरवरोहमभिधायतदनु
कथमवरोहन्तीत्याशङ्कायाम्
किमाकाशादिस्वरूपमेवावरोह
न्तः प्रतिपद्यन्तेकिम्वाकाशादि
साम्यमिति ततश्चाकाशवायु
धूममेघसाम्यमासाद्यवर्षधारा
द्वाराभुवंप्रविश्यव्रीह्याद्यन्नसंप
र्किणोभूत्वाऽदनद्वारावीर्य्यसि
क्पुरुषयोगेनवीर्य्यमाधाय
मैथुन्यद्वारास्त्रीयोनौप्रविश्यरम
णीया चरणाशीला ब्राह्मणादि
योनिमापद्यन्तेकपूयाचरणाशी
लाश्वपश्वादियोनिमाद्यन्तइत्यभि

हितम् तत्र स्वर्गादवरोहतां यो व्रीहियवादिरूपः स्थावरभाव आम्नातः स किं तेषां व्रीहियवादिरूपेणोत्पत्तिरुतान्यैर्दुष्कृतिभिर्जीवैरधिष्ठितेषु व्रीह्यादिषु संसर्गमात्रमिति संशये तद्दुह व्रीहियवा इति जायन्त इति जनिश्रुतेर्मुख्यमेव तेषां व्रीह्यादिरूपेण जन्म इति प्राप्ते (अन्याधिष्ठिते पूर्ववदभिलापात्)
अ· ३ पा· १ सू· २४ इत्यनेन सूत्रेण अन्यैर्दुष्कृतिभिरधिष्ठितेषु व्रीह्यादिषु संसर्गमात्रमेव न मुख्यं जन्म इत्येवं सिद्धान्तिते पुनः शारीरजैः कर्मदोषैर्याति स्थावरतां नर इति स्थावरभावस्य पापफलत्वेन मनुना स्मरणात् कथं पापफलमभुङ्क्त्वा व्रीह्यादिभाव

मवरोहन्तः प्राप्नुयुरिति नच व्री
ह्यादिरूपेण अमिरेव पापफलन्तत्र
स्मर्य्यते न तु व्रीह्यादिसंसर्गमात्र
मपीतियुक्तम्, नहि दुष्कृतक
र्माणः स्थावरभावमापन्ना व्रीह्या
दिरूपेण परिणमन्ते किन्तु व्री
ह्यादीनधिष्ठाय तत्र वर्तन्ते नतु
स्वादिभागोभवन्ति स्थावरत्वेन
संसर्गविशेषउभयोः समानोना
स्ति विशेषस्तत्रेति नच संचि
त दुरित वतामेवावरोहताम् अयं स्था
वर भाव इति वाच्यम् संचितसु
कृतवतामपितात्सेनाऽरात् त
त्र कथनं सुदृढं पापफलत्वोपा
जन्मकृत्याशङ्का (अन्यवदभिति
चेन्नपादनात्) अ. ३ पा. १ सू. २४
अस्यायमर्थः यस्मिन्नवरोहणे पापभु

हिंसादियोगादम्युदमाध्वरिकं क
र्मतस्यानिष्टमपिफलमवकल्प
त इत्येतोमुख्यमेवानुशयिनां
जन्मास्तुतत्रगौणीकल्पनानर्थि
केतितत्परिह्रियते (नशाब्दात्)
वेदात्, शास्त्रहेतुत्वाद्धर्म्माधर्म्म
विज्ञानस्येतिलब्धादेतस्यार्थ
स्याशङ्कनीयत्वात् अन्वायम
भिप्रायः स्थावरभावोद्विविधः
एकोव्रीह्यादीनधिष्ठायतदभि
मानित्वरूपोऽन्यस्तुव्रीह्यादि
संश्लेषमात्रः तत्राद्योव्रीह्याद्य
भिमानेनतद्वच्छेदेनदुःखभा
क्त्वसद्भावात्पापफलरूपस्तद
भिप्रायेणैव (शारीरजैः कर्म
दोषैर्यातिस्थावरतांनर इतिस्म
रणम्, द्वितीयस्तुतदभिमाना

भावान्न पापफलरूपः किन्तु (रेतः सिग्योगोऽथ) अ० ३ पा० सू० २६। इत्यनुसारेण रेतःसिग् योगयोनिप्रवेशद्वारा पुनर्जन्म ग्रहणेद्वारभूतो ब्रीह्यादिसंस र्गरूपः। तुल्येपि ब्रीह्यादिसम्ब न्धे तयोरन्यः पिप्पलंस्वाद्वत्य नश्नन्नन्यो ऽभिचाकशीति, इ तिवदभिमानाभावेन न संस र्गिणां दुःखयोगः। अत एव ब्री ह्यादिषु लूयमाने कुण्ड्यमा ने षु पच्यमाने षु भक्ष्यमाणे षु च तदभिमानिनोऽनुशयि नः प्रवसेयुः। यो हि जीवो य च्छरीरमभिमन्यते स तस्मिन् पीड्यमाने प्रवसतीति प्रसिद्ध म्, संसर्गिणां तदभिमानित्वे

तुब्रीह्यादिनाशे तेषां देहिना मुक्तानेरवश्यम्भावात्, रेतः सियोगादिना पुनस्तेषां जन्माभिधानं न सम्भवेत्, यथा हि पूर्वं वाय्वादिषु तस्य संसर्गमात्रं तथा ब्रीह्यादिष्वपि संसर्गमात्रमेव तस्येति, तस्माद्व्रीहियवादिसाधारण्येन मांसल्वमारोपयतस्तव ब्रीह्यादौ स्वर्गादवरोहतो जीवस्य प्रवेशो व्यर्थस्ते प्रयासः। पूर्वतरएवदुराचारैरधिष्ठितत्वेन तेनापि त्वदभीष्टसिद्धेः। सल जीव एव पृथगीश्वरवन्नतेन ब्रीह्यादेः प्राण्यङ्गत्वम्, ब्रीहिवच्छेदेन च तस्य दुःखा

भावान्न पापप्रयोजकत्वमि
ति विदाङ्कुर्वन्तु विद्वांसोऽस्य
सारासारतामसम्बद्धप्रला
पस्येत्युपरम्यते, कर्ममात्र
विलोपे दुरुपापत्वावनिष्टत्वे व्य
भिचारइत्यत्रानिष्टे कर्ममात्र
विलोप दुरुपापत्वे व्यभिचारइ
त्येवं सम्बन्धे स्वल्पप्रत्ययपरहि
तेन्च सुस्फुतरत्वम्, पृ० १६ पं०
४ रसरक्तादि क्रमेण रक्तज
नितत्वेवे मांसत्वन्तदा भुक्त
स्य जलादेरसादि क्रमेण जा
यमानत्वस्य सत्वात्मलादिनि
रुद्धिमत्साधारण्यं रजस्योपि
योगप्रयोजकत्वे भुक्ताहारपा
कक्रमेण रसजनितत्वसारत्वे
दुग्धसाधारण्यमिति, अहो

दृष्टव्याघ्रास्यलेखनशैली, र
सरक्तादिकर्मोरसजनितेवर्त्तते
नतुरक्तजनिते प्रतीयते आदौ
रसशब्दप्रयोगात्, रसादिकर्मे
णरक्तजनितत्वंवाच्यम्, नहि
रक्तादिकर्मस्यरक्तेसत्वंकर्म
मोत्तरवर्त्तिनि नतुस्वोत्तर
वर्त्तित्वंस्वस्मिन् भुक्तस्य जला
देरत्र पीतस्यजलादेरिति वा च्यं
भोजनन्तु कठिनद्रव्यस्यगला
दधः संयोगः। पानंच द्रवद्रव्य
स्यगलादधः संयोग इति भेदः
अन्यच्चद्रष्टव्यं जायमानलस्य
सत्वादित्युक्तम्, कुत्रेतिनाभि
हितंसप्तम्यन्तं पदंयत्र जायमा
नस्यसत्वंस्यादित्यसम्बद्धप्र
लापएव अन्यच्चदुग्धसाधा

रण्येरसजनितत्वंमन्यते य
थारसजनितरक्ते तथादुग्धे
पीतिदुग्धस्यापिरक्तत्वापत्ति
स्तूते, नजानात्ययंरक्तप्रवा
हिनीनाडीभ्योभिन्नादुग्धप्रवा
हिन्यो नाड्य इति तस्माद्रक्तप्र
वाहिनीनाडीद्वारारक्तजनित
त्वंमांसत्वम्, दुग्धप्रवाहिनी
नाडीद्वारारसजनितत्वंदुग्ध
त्वम्, अत्रानेन किं मांसत्वंप्रा
ण्यङ्गविशेषत्वं चेद्व्रीहियवा
दिसाधारण्यमितिवदता मां
सस्यानिर्वाच्यत्वंसाधितन्त
च्चभक्ष्यत्वे तन्त्रमितिसिद्धम्,
तन्न कौतुकेनोपहासेन च किं
चिदुच्यते, तच्चयुक्तमेवव्य
क्षानुरूपोबलिः याद्दृशीशीत

लादेवीताद्दृशो वाहन्नः स्वरूपति
न्यायाभ्यां याद्दृशोऽस्य ग्रन्थस्ला
द्दृष्टान्ते व प्रतिबन्धुत्तरम् हन्त
भोः शब्दप्रमाणगम्यान् विष
यान् मार्तण्डो जयतर्क
स्याप्रतिष्ठानात् नापित्वमो
द्दृक्तर्क निपुणो येन विषय
सिद्धिस्स्यात्, वदसूक्ष्म दृष्टे!
मलमूत्र स्पर्शी कर चरणादि प्र
क्षालनं किमर्थमनुतिष्ठसि त
योः पुनरप्यन्तः संसर्गस्त्वात्
अत स्त्वं जोद्दृक् सूक्ष्मदृष्टिं प्रा
प्य प्रमाणमेवाश्रयस्व, यदि
वस्तु सर्वदैव शरीरान्तः अन्
तः मित्त्वरति तस्य बहिरुद्द
प्य लोऽन्तः स्थ स्यैवेति किं म
न्यते तेसूक्ष्मदर्शिनोबुद्धिः।

तस्मान्न यं मांसस्य लोक प्र
सिद्धं द्वयं व्यवहारादुहीत
शातिकमेव स्थौल्यं नोचे
न्मलमूत्रयोरपि निर्वचनकं
किन्त्वावन्मूत्रत्वं प्राप्यनर्ग
तजलत्वञ्चेन्नारिकेर जला
देरपि तथात्वान्मूत्रत्वापत्तेः
पीतजलादेःपाकक्रमेण ज
लजनितत्वञ्चेद्वैतःसाधार
ण्यम्, पीतजलादेः प्राप्य
न्तर्गतत्वेनाधःस्रुतत्वञ्चेत्त
दाह शाखकविशेषद्रवस्या
पि तथात्वापत्तेश्च, मेढ्रद्वार
स्रुतत्वञ्चेत्तर्हि योनिद्वार
स्रुतेऽव्याप्तिःस्याच्चतुर्गो वा
तिव्याप्तिः। मुखतःपीतस्य ज
लादेरधःस्रुतत्वं चेत्तदापि

स्रुक्रेऽतिव्याप्तं वज्रोली क्रियायाऽऽकृष्टस्य जलस्य पुनः स्रुतेमूत्र विशेषेचाव्याप्तम् मेढ्रयोन्यतरस्रुतत्वं चेन्न पुंसकमूत्रेऽव्याप्तिःस्यात् नपुंसकस्य योनिसत्त्वे स्त्रीत्वापत्तिः मेढ्रसत्वे पुंस्त्वापत्तिश्च-स्यात् मेढ्रयोन्युभयस्रुतत्वं चेत्प्रत्येकेऽव्याप्तिःस्यात् प्रत्येकस्योभयानतिरिक्तत्वं चेन्नपुंसकमूत्रेपुनरप्यव्याप्तिस्तदवस्था, यदि सामान्यतः पीतजलस्याधोद्वारेण स्रुतत्वं चेत्तदा स्रुक्रेऽतिसारे चातिव्याप्तिः स्यात्, किंच पात्रस्य जलादिनाभिन्नत्वेनापि दुर्वचम्॥ तथाहि पात्रस्थं

जलं मूत्राद्भिन्नमभिन्नं वा अ
भिन्नं चेन्मूत्रवत्तस्याप्यपेय
त्वापत्तिः। भिन्नं चेन्मूत्रप्रति
योगिकभेदोऽपि भिन्ने धर्मि
ण्यभिन्ने वा अभिन्ने चेदनेनै
व भिन्नत्वादभिन्नत्वव्याघा
तो भेदप्रतीतेर्भ्रमत्वञ्च स्या
त्, भिन्ने चेद्भिन्नो नाम भेदवा
न् भेदवत्ताच्च केन भेदेन अ
नेनैव चेदात्माश्रयः। घटभेदे
न चेत्सोऽपि भिन्ने धर्मिणि भि
न्ने वा, नाद्यो व्याघाताद्भेद
प्रतीतेर्भ्रान्तेश्च, नान्त्यः स्वेनै
व चेदात्माश्रयः। मूत्रभेदेन चे
दन्योन्याश्रयः। पटभेदेन चे
त्सोऽपि भिन्ने भिन्ने वा, नाद्यो
व्याघातभ्रमत्वयोस्तादवस्थ्या

त, नान्यस्तत्रापि स्वेनैव चे
दात्माश्रयो द्वितीयेन चेदन्यो
न्याश्रय आद्येन चेत्स्वग्रहसा
पेक्ष्यग्रहसापेक्ष्यग्रहसापे
क्ष्यत्वेन चक्रका कुशलमे
केन चतुर्थेन चेदनवस्थेति,
सूत्रस्यापि पात्रस्य जलादि
नाभिन्नत्वेनानिर्वचनीय
त्वात्तेयत्वं स्यादित्युपहास
स्या जैनजातमुत्तरम्, अहो!
सूक्ष्मदृष्टिः। अतएव जैहदु
राग्रहलम्, पृ० १६ पं० १५। अत्र
वृथाकृसरसंयावं पायसा
पूपमेव च। अनुपाकृतमांसा
नि देवान्नानि हवींषि च, म०
अ० ५ श्लो० ७। अत्रानुपाकृता
नि मांसानि संयावादिष्वादेव

सात्कृते सममभक्ष्यत्व मिति,
अत्रायमभिप्रायः। यदा हि मां
सादीन्य पवित्राण्युपाकरण
कर्म्म विनाऽभक्ष्याणि तदा कि
मुवक्तव्यं देवान्नानि हवींष्य
तिपवित्राण्यभक्ष्याणीति कै
मुतिकन्यायेन तत्कर्म्मप्राश
स्त्यबोधकत्वेनावश्यकर्त्तव्य
ताद्योतनार्थं मानववचनम
क्षत्रियादिसाधारण्येनेति,
क्षत्रियस्यमगयाया मुपलब्ध
स्यमांसस्योपाकर्म्म विनाऽ
भक्ष्यत्वमुक्तं नतु ब्राह्मणस्येती
ति,, पृ० २७ पं० १। वृक्षगावस्तु
तो चेतनत्वेनोपदेशे पूर्वोक्त
श्रुतौ चक्रीयमानत्वेनावस्थ
स्थावरत्वेनाभिमतेषु जीव

त्वमिति, ❀ अहो पाण्डित्यम्
नायमेतद्विजानाति यद्यूपग्रा
वयोर्जडत्वमस्ति यतस्तयो
श्चेतनोपदेशो नेति वदति,
शृणु भोः। तदाशयम् यच्चे
चेत्त्वौर्जुत्वे त्यादि मन्त्रेषु हे
शाखे इति सम्बोधनं शाखा
धिष्ठात देवता विषयम्, तथा
हे यूप हे ग्राव इति सम्बोधन
मपि तद्देवता विषयम्, नतु
यूपग्रावयोश्चेतनत्वमाशङ्
क्यम् अतः पृच्छान्यान् विदु
षः कीदृशमसङ्गतं शास्त्रसंस्कार
शून्यत्वव्यञ्जकन्ते ऽभिधानम्
पूर्वोक्ते श्रुतेस्तात्पर्यं मानवस्मृते
श्चतात्पर्यं मयातत्रैव प्रदर्शितः
करोनिहत्यद्रूश्व्यः तच्चविद्वत्सु

दर्शयिस्वतोप्यल्पविदोषुस्वच्छात्रे
षुमादर्शयेति पृ.१७ प.१४ वे
दानुकूलत्वादिति हेतौविरुद्धत्वं
चेदननुकूलत्वमिति अत्रयद्य
प्यशुद्धिरस्तुमुद्रणकर्तुर्दोष
स्तथापिषष्ठहेतुखराडनेनखराड
पिष्यत इत्युक्तिस्त्वाशामोदका
यिता अहमपिषष्ठहेतुमराडने
नैवमराडपिष्यामीति पृ.१७पं.१७
प्रत्यक्षतोऽनुपलभ्यमानमूलवेद
कत्वंवेदाननुकूलत्वमितिचेत्स
न्ध्याविनियोगविधिवोधकस्मृ
तिसाधारणायेनव्यभिचरितोहेतु
रिति अत्रवदतोव्याघातदोषप्र
सङ्गः।यदाताहशविधिबोधक
स्मृतीत्युच्यतेतदाविधिमन्त्रना
मधेयनिषेधार्थवादरूपपञ्च

विधवेदवाक्यान्तर्गतविधिरूपवे
दबोधकत्वेनतन्मूलकत्वमेवतद्बो
धकस्मृतेरितिकथंव्यभिचरितो
हेतुः नन्वत्रविधिपदप्रमाणात्प्र
सिद्धंविनियोगबोधकस्मृतौव्य
भिचारइतिचेन्नविनियोगबोधक
स्मृतेर्ब्राह्मणवाक्यमूलकत्वात् श
तपथादिभिर्मन्त्राणांविनियोगाः
प्रदर्शिताः अयंमन्त्रोऽस्मिन्क
र्मणिविनियुक्तइति किंचक
स्यसास्मृतिः किंरूपावेत्यपिन
त्वयाप्रदर्शितम् किंसन्ध्याविनि
योगेषुजलविनिर्मोकेविभ्रान्तः
तस्यापिशिष्टाचारत्वंनस्मृतित्वं
नहिस्मृतिषुजलनिर्मोकोविहि
तः परन्तुप्रामाण्यमस्तितत्रशि
ष्टाचारस्येति किंचकथन्त्वया

निर्णीतिमनुपलभ्य मानवेदमूल
कत्वं वेदानामानन्त्येन द्रष्टुमस
मर्थत्वात् अतःशिष्टाचारस्वत
न्त्रप्रमाणमिति पृ॰ १८ पं॰ १ अनु
मितवेदमूलकत्वाभावश्चसन्ध्या
दीतिकर्त्तव्यताकलापवत्स्वरूपा
सिद्धइति अत्रदृष्टान्तावच्छेदे
न हेतोरसिद्धिर्नहिसन्ध्यादीतिक
र्त्तव्यतायामनुमितवेदमूलकत्वा
भावोपिनिर्णेतुंशक्यस्तथावेदा
नामानन्त्यादित्यनर्गलन्तेवचः
पृ॰ १८ पं॰ ५ वैदिकलौकिकविनि
योगानुवादत्वस्य सकलतन्त्र
ग्रन्थेषुपद्धतिप्रकरणेसत्वेनतद
भावः स्वरूपासिद्धोहेतुरिति
अहो अस्यकुकल्पनाप्राबल्यम्
सन्ध्याविनियोगादिपद्धतौवैदि

क विनियोगानुवादत्वं न प्रतीयते
वामतन्त्रादि शिष्टजनगर्हितपद्ध
तौ तत्प्रतीयते, नह्येकदेशेन वाम
तन्त्रस्य वेदानुकूलत्वेन स्वरूपासि
द्धिरुद्भाव्या तस्य मूलच्छ बुद्धशाक्या
दिग्रन्थमात्रे सत्त्वात् तेषु वामत
न्त्रे च वेदानुकूलत्वमपि विषयुक्ता
न्नवदग्राह्यमेवेति न स्वरूपासिद्धिः
पृ. १८ पं. ७ मृतमनुष्य देवतोद्दे
श्यकेत्यादिहेतुर्न धर्म्मे प्रामाण्या
भावसाधकः पितृश्राद्धादिपैतृ
क कर्म्मणो वैदिकत्वात् तस्माद्वि
मूलत्वाद्व्यर्थमेव मृतजीवानां रघू
मणाशिविप्रभृतीनां जीवतां वान
हुषादीनां देवत्वमापन्नानामुद्दे
न कर्मबोधक वेदे व्यभिचारप्रद
र्शनेन वाग्जालं प्रसारितम् पृ. १९

पं० ३ यथेमांवाचंकल्याणीमिति
याजुषोमन्त्रोनहिसर्वजातिशुद्धि
करत्वेप्रमाणम्, तस्यदक्षिणाप्र
करणस्थत्वात्, सूनृतवाचः
प्रकाशकत्वाच्च, नापीडाभक्ष
णाय (दैव्याअध्वर्य्यवउपहू
ताउपहूतामनुष्या) इत्यादि
शतपथवाक्येमनुष्यपदेनशूद्र
चाण्डालादयोपि वामतन्त्रवद्गृ
ह्याः । यजमानपंचमाश्चातेऽत्र
इडांभक्षयन्तीति विशेषवाक्या
त्, वषट्कर्त्तुः प्रथमभक्ष इति
वाक्येनप्राथम्यविधानात्प्राथ
म्यविशिष्टभक्षणविधानाद्वा
शूद्रादिभिन्नानान्तेषामेवग्रह
णात् पृ० १९, पं० ११ भाक्तिकाण्डीय
सर्वशुद्धिकरत्वस्यधर्मशास्त्रेस

त्वेनव्यभिचरितः पञ्चमोहेतुः
श्रुतिस्मृत्यनुवादिकत्वमुपा
धिश्च वोध्य इति, अहो कीदृ
शोऽस्यव्यामोहः यतस्त्वङ्गा
राडीयशास्त्रे शुद्धिकरत्वे पुराणा
दिसंमतत्वेन श्रीरामभक्त्यानावि
कारिनिष्ठमुद्रेर्न ग्रहणमपितु
तत्तन्मार्गीयसंस्कारादिनाचाराङ
लादिनिष्ठसंस्कारबलमिहिविक्षि
तम् नहिनाविका दिषुदीक्षि
तत्वेन संस्कृतत्वम् केवलमीश्व
रगुरामविशेषेणैवमुद्रत्वमिति
नरामानुजादिसम्प्रदायवल्लभा
दिसम्प्रदायवच्चाराङलादीनां
दीक्षितत्वं धर्मशास्त्रेषु विहितमि
ति नतेषु पुराणेतिहासेषु व्य
भिचारः। उपाध्युद्भावनन्तु

महदसङ्गतम्, प्रमाणत्वाभा
वरूपसाध्याव्यापकत्वात्,,
पृ०१९ पं०१३। अत्रै वेदविरुद्धत्वं
नाम वेदाननुकूलत्वं वेदवाक्या
विरोधिवाक्यार्थबोधजनकत्वमि
ति अत्रात्माश्रयदोषो नास्य प्र
तीयते वेदविरुद्धत्वलक्षणास्य वे
दवाक्यविरोधीति वाक्यघटितत्वा
त्स्फुटतयात्माश्रयदोषः प्रतीय
ते तस्माद् दुष्टमिदं लक्षणम् अ
तो वेदविरुद्धत्वं च श्रौतस्मार्तक
र्माधिकारिदेशकालाङ्गादिभ्यो
भिन्नधूर्त्तकल्पितानुष्ठीयमान
त्वम् यथा ज्योतिष्टोमादौ विधि
विहितपश्वालम्भनत्वादिस्मि
न्नेवकाले तस्मिन्नेवदेशेन तन्त्र
याजाद्यङ्गकर्मोत्तरं तत्तत्कर्मे

करणाकर्त्तृदेवतोद्देश्यकंतत्तद
धिकारिकर्त्तृकंततोभिन्नदेशि
कभिन्नकालिकादिसर्वन्तद्धेद
स्मृतिविरुद्धमितिकथंवानभा
र्गवेदस्मृतिविरुद्धं नस्वीकरो
षि, तस्मादनेनैववेदविरुद्ध
शब्दार्थकरणेनाग्रिमः सर्वोपि
विचारः कवलितः। वेदवाक्य
विरोधिवाक्यार्थबोधजनकत्वा
र्थकरणे नतदुत्थानादिति ॐ
पृ. २ पं. ४ तन्त्रे च स्मृतिरिति
अत्रवामतन्त्रंचानुभवः सोपि
धूर्त्तव्यभिचारिणांनशिष्टानां
कृत्वाप्यार्षग्रन्थेषुवामस्यानुक्
त्वात पं. ५ शिष्टाकोपेत विरु
द्धमिति,, वामेतु शिष्टकोपत्त्वाद्
विरुद्धमेवेति सूत्रार्थस्पर्शित्व

मू. हन्त भोः । पूर्वोक्तश्चारम्भश्रु
तिस्मृतिभिर्विनापि मुख्यापयसि
जैमिनिसूत्रैश्च वेदार्थमीमांसके
र्वाममार्गीयाहृगर्हितं साधयि
तुमिच्छसि मुधैव विभ्रान्तोसि
नहि धूर्तप्रणीताग्रन्थाः स्मृतयो
भवितुमर्हन्ति यदि चाण्डालीव
मकार्यादिस्त्रीधर्म्याचारः प्र
काश्यते तर्हि स्मृतित्वं तु दूरापेत
मनुभवत्वमपि दुर्लभं स्यात्, त
स्मात्तूष्णींभव मा परिश्रमं कुरु
वामतन्त्रे स्मृतित्वं साधनाय य
नहि चाण्डालादि सम्बन्धः स्व
वीर्यहोमस्तत्किं दृष्टभक्षणांच यो
निःसारिततोयतर्पणादि वि
न्यकर्म विहितं तान्ग्रन्थान्स्मृ
तित्वेन स्वीकुर्वन्नुपहसनीयः स्यात्

अग्र प्रष्टव्यो भवान् तादृशानि
त्रिकमार्गीय ग्रन्थेषु स्फुलिङ्गं
लिखाधयितुः । यः खलु ग्राल
पादि पूज्यवर्णानां लिपस्तास
त्र कथं नाभिमताः । प्रत्युत चा
ण्डाली वैश्या यवनी रजका
द्यागृहीताः । कुत्र किंत्वत्र कार
णम्, अर्थैस्ते प्रयासो वाममा
र्गीयतन्त्रस्य स्फूर्तिसाधना
येति,, पश्येद्यानीं वाममार्गीया
चारम्,, ओं च,, मनोरथमध्य
सिद्धिरस्मद्हस्ते सदाभवेत् । पर
दारान् समालिङ्ग्य सम्प्रज्य पर
मेश्वरीमन्त्र । अहो वामा गाः
स्वदारालिङ्गने परमेश्वरी न
प्रसीदति वाममार्गीयेष्वन्ये प्र
णीतग्रन्थे पर दारालिङ्गने वै

वप्रसीदतीति, अन्यच्च, हस्ता
हस्तिकयार्योगं कृत्वा जपास्त
वं पठेत्तु। योनिं वीक्ष्य जपेत्स्तो
त्रं कुवेराद्धिको भवेत्।२६। तत
रुणीं सुन्दरीं रम्यां चञ्च काम
गर्विताम्। समानीय प्रयत्नेन
संशोध्य न्यासयोगतः।२७। प्र
सून मञ्च संस्था पृथिवीं का
शितांचरेत्, मूलचक्रं संभा
व्य देव्याश्च रणसंयुतम्।२८।
अष्टोत्तरशतैर्यौनिं प्रमश्याद्यु
न्थ्या यत्नतः। संयोगीमुपजप्त
व्यं सर्वविद्याधिपो भवेत्।३१।
श्मशाने पर्वतप्रान्ते एकलिङ्गे
शिवालये मुण्डयोनौ रतौ
स्त्रीत्वागेहे वेश्यागृहे तथा।
३३। कुहूनीगृहमध्ये च कदली

मण्डपे तथा पठेन्नामसहस्रा
ख्यं स्तोत्रं सर्वार्थसिद्धये ।३४। वि
द्वेषणं च लिखेत्पुष्पब्रह्मदले
पि वा मुस्तकैः शोणितामे पुनी
श्रायन्ने स्थितः ।३६। जम्बूकाली
मके स्तोत्रं लेखनी सिद्धि मागम
येत् पितुरं योगनाशाद्वतु
श्री सारणमेव च ।३७। आलो
कयन् छिद्राणि सः परस्य सिंचि
तेषु नः सुधा श्रीदक्षिणं का
लीं योनिं स्वकरेण चरेत् ।३८।
कादम्बरी सिन्धुमध्ये सुराहै
श्र सामध्ये । योनिक्षालितमो
ये स्त्रयोनिलिङ्गमस्तेरपि ।३९।
लज्जा स्त्रकुसमैः पूजनं जपाने
तर्पयेच्छिवाम् । सर्वसाम्राज्य
नामा तु स्तुत्वा नत्वा स्वशक्ति

नः।५८। ऐश्यामलतां महेश्वरोत्त स्यायुक्ताननकान्नरः। तस्याऽपि वै मुखचन्द्रस्य तदसंक्लिष्टं प्रज पेत्।५९। पुरश्चर्यापाठमहेशानाम कारपञ्चकान्वितः। शुक्लमम चेतसं त्याग्य शक्ति न्यासपराय णः।६०। पात्राणां स्थापनं कृत्वा दिग्वस्त्रो न समाचरेत्। सम्मा वाचकं मूले तत्रावरणां जपेत्।६१। शतमष्टोले शतं केशे शतं सिन्दूरमण्डले शतत्रय कुचद्वन्द्वे शतंनाभौ महेश्वरी।६२। शतं योनौ महेश्वरि।६३। शतं योनौ महेशानि संयोगे च शतत्रयं जपेत्तत्र महेशानि तदन्ते प्रपठेत्स्तवम्।६४। अन्यामालिङ्ग्य प्रजपेदन्यां स

त्युक्त्वैवं पठेत्। अन्यां समपूज
येत्तत्र त्वन्यां संमर्दयन् जपेत्
।६७। अत्र कामिभिर्निस्त्रीपापा
अधिकारेऽभिहितः स्त्रीयात्व
न्यहेऽदातव्या चाण्डाली नु
स्वयम्भजन्ति कामिनः। अहो
एषांस्वत्याचारः। यदि यक्षि
भूतकूष्माण्डवेतालादीनां भ
वेदपिसिद्धिः किन्तया कारि
ष्यन्ति ब्राह्मणजाति रूपां
मोक्षद्वारभूतां सिद्धिं विह
ाय यदर्थं विश्वामित्रो राजर्षि
दर्श वर्षसहस्राणि घोरं तप
श्चकार तस्मादिमेकामिन
इहलौकिकफलदां समीह
न्ते अहो मन्दभाग्यमेषाम्
अहो मौढ्यमेषां हतमेषांज्ञा

नं कलिनेति विजानीमः। य
च्छि वाममार्गीयपुस्तकाभासे
ष्वस्ति तत्वं प्रतिपद्यन्ते, अ
न्यच्चोक्तम, अन्यायोनौ ध्वजं द
त्वा पुनः पूर्वादाचरेत् ॥ अवधानसह
स्रेषु शक्तिपातशतेषु च ६८ राजा
भवति देवेशि मासपंचकयोगतः य
वनीशक्तिमानीय गानशक्ति परा य
णाम् ६९ अत्र यवनीशक्तेरानय
नं विहितं वाममार्गीयैस्तत्तौ तस्या
आनयनं विनात्र्ह्मत्व विनाशः कथं
स्यादिति तस्य हेतोरवश्यमानेतव्या
सापि गानशक्तिपरायणाऽन्यथा
ऽऽनन्दाभिव्यक्तिर्न भविष्यति त
स्याः संभोगानन्तरन्तदीययोनि
प्रक्षालिततोयेन तर्पणं च भवेदित्य
तीत्यादिबहुभिर्हेतुभिस्तस्याय व

नीराक्षेरावरूप कर्त्तं व्यमेवोक्त
मिति, कामार्णोंरात्रिमानीयरोनो
तुम्लन्तकेम विलिख्यपरमेशा
नितंत्रमन्त्रं लिखेच्छिवे तल्लिङ्गेन
प्रजपेद्देवि सर्वशास्त्रार्थतत्ववित्
अस्तुतानिच शास्त्राणि वेदादीन्यष्ठ
धुवम् ७३ सिन्दूरतिलकोदेवि वे
श्यालयो निरन्तरम् वेश्यागृहे नि
शाचारो रात्रौ पर्यटनन्तथा ७८
शक्तिपूजापरो नित्यं खड्गहस्तो
दिगम्बरः मुक्तकेशो वीरवेषो कुल
मूर्त्तिधरो नरः ७९ कालीभक्तोम
हेदेवि नान्यथा शोभमाप्नुयात् दु
ग्धस्वादी योनिकेली तथैव सत
धूर्त्तिनः ८० वेश्याकृता समायो
गान्माहात्म्यं कृतास्वयम् वै
श्या चक्र समायोगात्काली चक्रस

मस्तयम् ८१ वेश्यादेहसमायोगा
त् कालीदेहसमस्तयम् वेश्या
मध्यगतंवीरं कत्पश्यामिसाधक
म् ८२ श्मशानस्थोभवेत्स्वस्थो
गलितं चिकुरञ्चरेत्दिगम्बरः स
हस्रंच स्वयपुष्पंसमानयेत् ९१
स्ववीर्य्येणाप्लुतंकृत्वाप्रत्येकंप्रजप
न्हुनेत् पूज्यध्यात्वामहाभक्त्या
क्षमापालोनरोभवेत् ९२ नरके
शंस्ववीर्य्यंच पधृत्समार्जनीगतम्
मुक्तकेशोदिगम्बरोमंत्रपुरःसर
९३ इत्येवंरूपाचारेषुस्तुतिपरं
प्रभुजानः क्षयंनोय हलीयरस्यात्
लोप्रमार्गीयकर्मणिचनप
क्षरास्व प्रयोगोऽप्यथार्व
नतन्त्रीयकर्मण्यपियद्वारा
स्वप्रयोगस्यात् वाममार्गीयतन्त्र

भाषानां स्मृतित्वे किमपराद्धं यव
नतन्त्रेण येन न तत्स्मृतित्वे
नस्वीक्रियते किम्भोः वेदा
विरुद्धम्वाममार्गम्वदन् प्रपञ्च
स्त्वं चाण्डालीयोनिप्रक्षालितजले
न तर्पणम्वेदे क्व विहितं किं वा
चाण्डालादीनामपि संसर्गमात्रं
दर्शयिष्यसि यत्र शूद्रादयोऽप्य
धिकारिणो न भवन्ति किम्पुनश्चाण्डा
लादयोऽधिकुर्य्युः। किञ्च शूद्र
स्यां वेदाध्ययनानधिकारं निब
न्धनो ब्रह्मविद्यास्वनधिकारो वे
दान्त चतुर्थाध्याये व्यासदेवैरप्य
भिहितस्तथाहि (श्रावियत्वगते
श्चोतस्त्वन्वैरर्थेन लिङ्गात् अ·१
पा·३ सू·३५ अस्यार्थः॥ शूद्र
पदेन प्रकरणे सम्बोधितोऽपि जान

श्रुतिर्नाम राजा क्षत्रिय उत्तर प्रकर
णे तस्योपनिषदि क्षत्रियत्व सि
द्धेः सुस्पष्ट मुक्तत्वात् (संस्कार प
रामर्शात्तदभावाभिलापाच्च) अ. १
पा. ३ सू. ३६ अस्यार्थः॥ इतो
पिहेतोः शूद्रजातेरनधिकारः य
तस्तत्रोपनयनादयस्संस्कारा
परामृश्यन्ते तं होपनिन्ये अधी
हि भगव इति होपससाद शूद्रस्य
चैकजातित्वेन तदभावाभिलापा
च्च उपनयनादि वैदिक संस्कार शू
न्यत्वस्याभिधानादित्यर्थः (तद
भावनिर्धारणे च प्रवृत्तेः) अ. १
पा. ३ सू. ३७ अस्यार्थः॥ शूद्र
त्वाभाव निर्णये च तत्र वेदे आ
ख्यायिका सु च ऋषीणामुपन
यनाख्य संस्कार कर्मणि प्रवृत्ते

रभिधानात् (श्रवणाध्ययनार्थप्र
तिषेधात्स्मृतेश्च, अ० १ पा० ३ सू०
३८ अस्यार्थः ।। इतोपिशूद्रोन
धिकृतोवेदे तस्याध्ययनश्रवण
प्रतिषेधात् श्रवणप्रतिषेधोय
था पद्युहवा एतच्छ्मशानं यच्छू
द्रस्तस्माच्छूद्रसमीपे नाध्येतव्यम्
यदिनाम श्रवणोवेदस्यानधिकृ
तः शूद्रस्तर्ह्यध्ययनाधिकारस्त
स्य दूरपराकृतः सोयमर्थोवेदा
न्तमीमांसाश्रमजुषांविदुषांनति
रोहित इत्युपरम्यते षष्ठेऽध्या
येप्रथमेपादे पूर्वमीमांसायां जै
मिनिरपि बहुनायुक्तिकलापेन
शूद्रस्याध्ययनमाशङ्क्यप्रत्यबो
चत् तथाहि (चातुर्वर्ण्यमविशे
षात्) २५ अस्यार्थः ।। चत्वारोपि

वर्णा अपि कुर्वन्ति यान्त्रिके कर्मणि वेदे॥ यजेत्, जुहुयादित्यादावविशिष्याधिकारश्रवणात्॥ निर्देशाद्वा त्रयाणां स्यादग्न्याधेये ह्यसम्बन्धः क्रतुषु ब्राह्मणश्रुतेरित्यात्रेयः।३६। वा शब्दः पूर्वपक्षं व्यावर्त्तयति त्रयाणामधिकारः स्यात्, कुतः। अग्न्याधेये त्रयाणां निर्देशो भवति, वसन्ते ब्राह्मणोऽग्निमादधीत, ग्रीष्मे राजन्यः। शरदि वैश्यः। इति शूद्रस्याधिकारे श्रुतिर्नास्तीत्यनग्निः शूद्रो भवेदनधिकारी अग्निहोत्रादिके कर्मणि ब्राह्मणादीनेवत्रीनधिकृत्य सा श्रुतिः प्रवर्त्तत इत्यात्रेयो महर्षिर्मन्यते स्म॥ निमित्तार्थेन बादरिस्तस्मात्सर्वा-

धिकारः स्यात्,, २७। शूद्रस्या
न धिकार इति निरुक्तं यतोऽधि
जातमधिकृत्य, यजेत जुहु
यादिति शृणुमः सन्त्यासति
प्रतिषेधवचने, न शूद्राञ्जा
वर्त्तयति तत शूद्र अप्य
धिकुर्य्युरिति बादरेः पूर्व प
क्षः। ततः उत्तरसूत्रम्,, अपि
वाऽन्यार्थदर्शनाद्यथाश्रुति
प्रतीयेत,, अपिवाशब्दः पू
र्वपक्षनिरासार्थो यथा ब्राह्म
णादयो हि आधाने श्रूयन्ते
तत्र वसन्तादि कालश्रवणे
न ब्राह्मणादित्रितयकर्त्तृकं
वसन्तादित्रितयकालकर्म्मा
धानमित्यर्थलब्धेः। तथा चै
वं शूद्रवर्जितानामेवानुक्रम

णं भवति,, बार्हद्गिरं ब्राह्म-
णस्य साम कुर्यात्, पार्थुर-
श्मं राजन्यस्य, रायोवाजीयं वै-
श्यस्य, इति शूद्रस्य साम तु ना-
स्ति तथाऽन्यत्रापि, पयोव्रतं ब्रा-
ह्मणस्य, यवागू राजन्यस्य, आ-
मिक्षा वैश्यस्य, इति। तथाऽध्या-
ने पि, अष्टसु प्रक्रमेषु ब्राह्मणो-
ऽग्निमादधीत, एकादशसु राज-
न्यः। द्वादशसु वैश्यः इति, एवम-
ब्रह्मसामकमव्रतकमक्रमकं च
शूद्रस्य प्रयुक्तमपि कर्म निष्फ-
लं स्यात्, तस्मान्न शूद्रो जुहुया-
द्यजेत वेति,, पुनः पूर्वपक्षयां-
चकार,, निर्देशात्तु पक्षे स्यात्
३८। नैतदेवं, शूद्रस्याग्न्यभावा-
दनधिकारोऽग्निहोत्रादिषु, २

ति, सम्भवति हि शूद्रस्याप्यधान
म्, य एवं विद्वानग्निमाधत्ते, इति
श्रावणं सर्वाधिकारं स्यादिति,, वै
गुण्यान्नेति चेत्, उ०। यदुक्तम
ब्रह्मसामादिकं कर्म प्रयुक्तम
पि फलं न साधयेद्वैगुण्यात इ
ति, तत्परिहर्त्तव्यम्,, न काम्य
त्वात् उ०। नैष परिहारः। काम्य
त्वात्कामयिष्यते शूद्रः, तथा हि
अभीवर्त्तं नाम ब्रह्मसाम तद्धि अ
नारभ्य किञ्चिदाम्नातमविशे
षेण,, चक्षुर्विमत आद्ध्यात्
इत्यनियतकामके शूद्रस्य
नियम्यते,, मस्तु शूद्रस्य इति
सम्बन्धदर्शनादध्यवसीय
ते, मस्तु एव शूद्रस्य तस्मात्
त्रैवर्ण्यमधिक्रियत इति,,

संस्कारे च तत्प्रधानत्वात्॥३०॥
अस्यार्थः। त्रैवर्णिकस्य संस्कारः
शूद्रस्य न श्रूयते। इति संस्कारा
वर्त्तमानः शूद्रस्याधिकारं न
व्यावर्त्तयति याज्ञिके कर्मणि
पुरुषप्रधानो हि संस्कारः पु
रुषं संस्करिष्यति यस्य च यः
संस्कारः कर्त्तव्यत्वेनाभिहितः
स तस्यैवावश्यको नान्यस्ये
ति शूद्रस्य व्रताश्रवणान्नान
धिकारसिद्धिस्तस्येति॥ अ
पिवा वेदनिर्देशादपशूद्राणां
प्रतीयेत॥ ३१॥ अपि वा शब्दः
पूर्वपक्षनिराकरणार्थः। वेद
निर्देशात्, वेदे हि त्रयाणामे
व निर्देशो भवति, वसन्ते ब्रा
ह्मणमुपनीत, ग्रीष्मे राज

स्य सू० शरदि वैश्यमिति सू
द्राधिकारसमर्पकवेदभाग
दन धिकृतः शूद्रो यज्ञसू० इ
त्येवं पूर्वोत्तरमीमांसासु शूद्र
स्याधिकारो निराकृतः कथ
मुन्नाण्डालादयोऽधिकुर्यु
रिति वाममार्गीय ग्रन्थेषु वचा
ण्डाल्यादिशक्तिषु यवन्यादि
शक्तिषु चात्याचारोऽभिहि
तः। कथञ्च तत्रवेदविरुद्धं
नास्तीति त्वमभिदधासि॥ कै
यञ्च स्रुतिर्त्वं मवस्थापयि
तुमिच्छसि तत्रेति कथं वा पू
र्वोत्तरमीमांसादि सूत्रैस्ताद
ृशं शिष्टगर्हितकर्मसिद्धा
न्तयिमिच्छसि, अहो वाममो
हो यस्त्वति पवित्रतमेन वैदि

क कर्मणां ॥ त्यपवित्र्यां ममा
र्गीयत्कर्मसक्र मयितुमिच्छ
सि, तस्मात्वमात्तिनिषिद्ध
तन्त्राणांस्मृतित्वं नार्पितत्व
तिपापकर्मस्मात्रेमतस्तेन
वामतन्त्रवाक्येनश्रुत्यर्थस-
ङ्कोचमभिदधानउपहनीयः
स्यात् ॥ हन्तभोः। वाममार्ग
स्थितोविप्रस्तुलसीं नस्पर्शे
त्कचित्। नस्पृशेद्धात्वं वि
प्रं प्रणमेन्नचवैदिकम् ॥ यो
निक्षालिततोयैश्च योनिलिङ्ग
सृतैरपिस्वजातकुसुमैःपूज्यां
जपान्तेतर्पयेच्छिवाम् ॥ वेश्या
लतागृहेगत्वातस्याश्चुम्बन
तत्परः। तस्यायोनौमुखंदत्वा
तद्रसंविलिहञ्जपेत् ॥ कि

मत्र तुलसी भागवत विप्र वैदिक विप्र स्पर्शेद्दृश्या योनि प्रक्षालित जल स्पर्शे ऽपेक्षतरं मन्यसे, किं वा वेश्या योनौ मुखं न्द त्वा यद् रस विलेहनन्त त्कृते तरम्, किं मत्र मुक्तल ज्ञानां वाणिनां समाधानम्, किं कुत्र चिद्वेदे स्मृति षु च वैदिक विप्रं न स्पर्शेदथ च वेश्या योनि रसं विलिहीतेत्युक्तम्, किञ्च यत्रस्त्र्याद्यधिकारो पि निराकृतः कथं तत्र यवनी शक्तिमानीय गान शक्ति परायणाभिति गान शक्ति विशिष्टा यां म्लेच्छ जातीय स्त्रिय आनयनं घटेतेति, तस्मान्मद्य मांसादि भक्षणैर्धूर्तै र्वैश्यमि चारि भिः प्रणी

तेषु ग्रन्थाभासेषु नैव शिष्टैः
स्वीकृतत्वमिति व्यर्थस्तेप्रया
सस्तेषु स्मृतित्वसाधनाय स्मृ
तित्वमभ्युपगम्य च तद्विष
यस्य स्मार्त्तत्वेन विधेयत्वसा
धनायेति,, पृ० २० पं० ७ तत्र हि
वैधातिरिक्तत्वं यागातिरिक्त
त्वं वा संकोचयतु स्यतयातांत्रि
कयागेपि निषेधासंभवादि
त्युक्तम् ॥ अत्रो यमनेन नि
षेधशास्त्रस्य मा हिंस्यात्सर्वभू
तानीत्यस्य न सुरां पिबेदित्यस्य
च वाममार्गीययागातिरिक्त
त्वेन संकोचः कृतः स च न संभ
वति वाममार्गीयकर्मणो वै
धातिरिक्तत्वात्, यागातिरि
क्तत्वाच्च, निषेधविषयत्वा

त्, यत्र हि चाण्डालस्याहिंसाः
सत्यचौर्यमिहितः। अथ चैते
ष्यायो निष्कालितजलतर्प
णादिर्विहितः स्वीयध्येहोम
स्य तत्र प्रामाणिकत्वं स्मृतित्वं
च प्रतपन्सतां श्रोचनीयोरा
त्रं हि ह्रणीयो विद्वद्भ्योपह
नीयश्च, किंच वामतन्त्रे प्रा
माणिकत्वस्यैव विवादस्थल
त्वात्तत्र च विधिवाक्यानिया
नि कथं तानि विधायकानि
स्युः। किंचेमे वामिनो यदि
वाममार्गीयं कर्मकर्त्तव्यमि
त्येवं प्रामाणिकस्य कस्या
पि कस्मिंश्चिद्ग्रन्थे दर्श
येयुस्तदैमे स्वेरन्नपि, तत्र
स्थ न वाममार्गीयकर्माणिय

ह्य शास्त्रार्थमत्वमिति सर्वैः सि
कताकूपायितम्, किं च मा
हिंस्रकादि स्वादिनि, अनिमो
दीयमिति स्वादीनि च प्राक्षेपांस
तिथाचकानि स्मृतिवाक्यानि
अग्रालंभं गवालम्भमिति
युगमेदव्यवस्था कापित्रा
दिदेवतोद्दृश्येन मांसनिषेध
कानि चात्रार्थे ग्रन्थेषा
चार्थग्रन्थेषु चकृतव्यवस्था
नित्वमपुनर्वो मंसाधयितुं प्रव
त्तः। अतः स्वकर्तव्यं विस्मृत्या
न्यत्रान्यसाधितविषयेषु किम
र्थमनुधावसि, तत्साहाय्यात्वे
हृतरमनिष्टं प्रसज्येत, यत्र
नतुरूपाक्यादितन्त्रेष्वपिवा
मवयतिकिं चित्साहाय्यसत्ता

न्यान्यपि तन्त्राणि वेदबाह्यानि नस्युः। न वयं वामतन्त्रं यवनतन्त्रं वद्दूषयामो यदि वेदबाह्यं स्मृतिबाह्यं वा त्वमभ्युपगच्छेः किं च यथैषा पूर्त्तेकर्माणि स्मृतिषु प्रतिपाद्यन्ते तथा वामकौलमार्गीयकर्माणि किन्तु सुकर्त्तव्यत्वेन प्रतिपाद्यन्ते येन वेदस्मृतिबाह्यं नस्वीकरोषि किं च वेश्यायोनिक्षालितं तोयतर्पणविधायकवाक्यानि जिह्वयायोनिरसविलेहनविधायकानि च योनिमुखप्रक्षेपपूर्वकमन्त्रजपविधायकानि स्ववीर्यहोमतच्छिष्टभक्षणविधायकानि च चाण्डालीकर्मकारीत्यादिवाक्यानी

व वा मकोलतन्त्र वक्तु तिस्मृति

षु कुत्र चित्त्वया दृष्टानि येन श्रु

तिस्मृति भिर्वा मम मार्गं व्यवस्था

पयितु मिच्छसि स्मृतिषु च त

मन्त र्भावयितु मिच्छसि, तस्मा

त्किं   : निर्मूल कथनेन

विरमेदृश्यापारादित्यलं पल्ल

वितेन ११ पृ० २१ पं० ७। अत एव

चैतरेयब्राह्मणे सोमे राजन्या

गते अजं वोक्षाणं वेत्यादिग्र

न्थेन प्राप्तगोबधस्यापि अश्वा

लम्भमिति स्मार्तनिषेधेन सा

क्षाद्विहितत्वाद्बाधः। आरात्तेगो

घ्ने उत पूरुषघ्ने क्षयद्वीरायसु

म्नमस्मे ते अस्तु। १।११४।इत्यू

ग्मन्त्रोदित गोहिंसकवध्यत्वा

नुमित गोहिंसानिषेधापज

नकलेनगवालम्भस्यसाक्षाद्वि
धेयत्वेन पूर्ववाक्यानुमितमो
हिंसाविधेश्च मन्त्रग्राह्यत्वोपि
वालम्भीयमन्त्रकाण्डस्याध्य
य्यैवस्य च अग्निनाहविरिति
तिस्रोवपानायाज्यानुवाक्या
स्तं० का० ४ ।७ ।६ अनुसारं । मी० अ०
।६।तासिद्धमित्यादेर्यः विरोधे
परस्पर वाधे विकल्प समुच्चया
दिप्रसक्तौ विकल्पस्याष्टदोष
ग्रस्तत्वेनसमुच्चयस्य भावाभाव
विरोधेनासंभवाद वश्यं युगभे
देन व्यवस्था प्राप्तावस्यालभ
मितिपराशरोदितया कलियु
ग विषय निषेध व्यवस्थया वा
धः कलौ व्यवसीयते, इति॥
अथ मीमांसादिशास्त्रविरुद्धां

कलियुगवृत्तिगोमेधनिषेध
व्यवस्थां निरस्य तदविरुद्धं
युगभेदव्यवस्थां दर्शयामः। अ
होपर्णीं झरोदितस्म तेरभिप्रा
यज्ञाने कीदृशो विभ्रान्तोयः
स्मार्तनिषेधेन श्रौतविधे
र्बाधं ब्रूते, अत्रैवगोहिं
सकस्य वध्यत्वमपि न प्रती
यते नापि तत्र बाधविधिदण्ड
विधानं स्मृतिषूपलभ्यते,,
कथं पुनर्गोहिंसकवध्यत्वे
न गोहिंसायां पापजनक
त्वमनुमिनोति, यदुक्तम्पुनः
पूर्ववाक्यानुमितगोहिंसावि
धेश्चेति तत्वतिस्यवीयः न
हि पूर्ववाक्यात्तदनुमानं ब्रा
ह्मणवाक्येन साक्षाद्विहित

त्वात्, यस्तु नःकात्याप न गोमि
लसूत्रास्यां मन्त्र ब्राह्मणयोः प
रस्परविरोधे वाधे विकल्पस
मुच्चये प्रसक्तिं वृते तदप्यस
समञ्जसम् प्रथमतोऽस्माभि
र्ऋग्वेदोऽवलोकितस्तत्र प्रथ
माध्याये नवममण्डले नवमम
न्त्रो नास्ति नवमाध्याये प्रथम
मण्डले नवममन्त्रो नास्ति, अ
परमन्यान्येवेदशान्युच्चरतिया
निकुतोपि नोपलभ्यन्ते, अस्तु
तथा मन्त्रो न निषेधविधायको
येन हिंसानिषेधप्रापकत्वा
द्विधिविहितया गोमेधीय हिं
सया विकल्पसमुच्चययोः प्र
सक्तिप्रयोजकत्वं स्यात्, म
न्त्रवेदतो निषेधवेदस्य नपुरं

पिबेत् न कलञ्जं भक्षयेत् ब्रा
ह्मणो न हन्तव्यः। इत्यादेः पार्थ
क्यात्, पञ्चधा वेदवाक्यानि
विधिमन्त्रनामधेयनिषेधार्थ
वादभेदात् तत्र मन्त्रास्तु प्रयोग
काले द्रव्यदेवतयोः स्वरूपस्मा
रका एव न हि तेषां विधायक
त्वम् पुनश्चात्र विकल्पसमु
च्चययोः प्रसक्त्यभिधानं मीमां
साशास्त्रसंस्कारशून्यत्वव्य
ञ्जकम्, यत्रैकस्मिन् कर्म्मे
ण्यनेकद्रव्यविधानं तत्र विकल्प
समुच्चययोः प्रसक्तिस्स्यात्
यथा व्रीहिभिर्यजेत यवैर्वा य
त्र प्रथमप्रयोगे व्रीह्यनुष्ठाने य
वशास्त्रप्रामाण्यस्य स्वार्थानु
ष्ठापकत्वरूपस्य परित्यागः।

स्वाधीननुष्ठापकत्वरूपस्या
प्रामाण्यस्य च स्वीकारो भवति
ततो द्वितीयप्रयोगे यवानुष्ठा
नेतु पूर्वपरित्यक्तस्य यवशा
स्त्र प्रामाण्यस्य स्वीकारः। स्वी
कृतस्य च तदप्रामाण्यस्य परि
त्यागश्चेति यवशास्त्रे चत्वारो
दोषा भवन्ति, तथा प्रथमप्रयो
गे यवानुष्ठाने व्रीहि शास्त्र प्रामा
ण्यस्य स्वाधीनुष्ठापकत्व ल
क्षणस्य परित्यागः। स्वाधीन
नुष्ठापकत्वरूपस्य-चाप्रामा
ण्यस्य स्वीकारः। ततो द्विती
यप्रयोगे व्रीह्यनुष्ठाने तु व्री
हि शास्त्रप्रामाण्यस्य पूर्वपरि
त्यक्तस्य स्वीकारः। स्वीकृत
स्य च तदप्रामाण्यस्य परित्या

गश्चेति, व्रीहिशास्त्रे चत्वारो दोषा भवन्ति, इत्येवं विकल्पो ऽष्टदोषदुष्टः। अत्रायं प्रष्टव्यो ऽपार्थकाभिधायकः। अञ्जं वोक्षाणं वेत्यस्य ब्राह्मणस्य, आरात्ते गोघ्न उत पुरुषघ्न इत्यादिमन्त्रस्य च कथं परस्परं विरोधः कथं वा परस्परं वा ध्यवाधकभावः। कथं वाभिन्नप्रकरणस्थस्य निषेधाविधायकस्य गोमेधीयहिंसाविधायकेन ब्राह्मणवाक्येन विकल्पसमुच्चययोः प्रसक्तिः। यथा वाप्य जतिषु येयजामहं करोति नानुयाजेष्वित्यादौ विकल्पप्रसक्तौ च पर्य्युदासन आश्रयणम्,

ननु पदाधिकरणकहोमवि
धायकविशेषशास्त्रेणाहव
नीयाधिकरणकहोमविधा
यकस्य सामान्यशास्त्रस्य
यथा वाधस्तथाऽनुयाजेषु
येयजामहमन्त्रप्रतिषेधक
रूपविशेषशास्त्रेण यागसा
मान्ये तन्मन्त्रविधायकस्य
सामान्यशास्त्रस्य वाधः कथं
न स्वीक्रियत इति चेन्न परस्प
रनिरपेक्षयोरेव शास्त्रयोर्वा
ध्यवाधकत्वात्, तथा च शा
स्त्रयोरेकविषये वाध्यवाधक
भावे परस्परनिरपेक्षत्वं हेतुः प
दशास्त्रस्य पदे जुहोतीत्यस्य प
दाधिकरणकहोमरूपस्वार्थ
विधानार्थमाहवनीयशास्त्र

निरपेक्षत्वात्, अनुयाजेषु येयजामहमन्त्रप्रतिषेधकशास्त्रस्य तत्र प्रतिषेध्यमन्त्रप्रसक्त्यर्थं यजतिसामान्ये तादृशमन्त्रविधायकसामान्यशास्त्रसापेक्षत्वादिति वैषम्यम्, तथा च भिन्नविषयोर्मन्त्रशास्त्रयोर्विरोधेन विकल्पसमुच्चयप्रसक्तिमभिदधानो न जिह्रेति, किंच मन्त्रे निषेधविधायकत्वमभ्युपगम्यापि न ते विश्रान्तिः, निषेधविधायकत्वमपि सामान्यतोऽभ्युपगन्तव्यं न तु विशेषतस्तथा च विशेषवाक्य नञ्लपणीयेन कथं विरोधः कथं वा बाध्यबाधकभावो विरोधे हि बलीयसा दुर्बलं बा

ध्यते नात्र कश्चिद्विरोधः। तथाच कथमुक्तं भावाभावविरोधेनासंभवादव्यवस्थां युगभेदव्यवस्था प्राप्ताविति, तस्मान्मत्वदुक्तकुत्सिहकल्पनया युगभेदव्यवस्था परास्तारोदितस्यतेः सिध्यतीति, किंच गोहिंसकवध्यत्वे नहेतुना गोहिंसानिषेधपापजनकत्वं साधयन्नयं प्रष्टव्यः किंच भोः निरर्गलाभिधायक! कीटसरीसृपादिहिंसकस्यवध्यत्वानभिधानात्तद्धिंसानिषेधपापजनकत्वं किं नस्यात्, मन्त्रप्रतिपाद्ययोर्गोपुरुषयोरतिरिक्तहिंसकस्य वध्यत्वाभावेन तद्धिंसापापजनिका नास्तीति

ब्रुवन्नाधिकतरमुपहसनीयः स्यात् किंच साक्षाद्विहितस्येतिवद् मासाक्षाद्विहित त्वाद्वाधइत्यस्यखंडं वद, तस्य प्रा प्तोवधस्येति षष्ठ्यन्तविशेषणत्वात् ११ पृ० २२ पं० ४ । पाक्षिकाभावस्य विकल्पे प्राप्ते तयातदनुवादि युगव्यवस्थायावेदानुकूलत्व सिद्धेरिति

महो अस्य महामोहो येन मन्त्राद्धिंसाया अभावंपक्षेप्रापयति, नहितत्र मन्त्रेण हिंसायानिषेधो विधीयते मन्त्रस्य विधायकत्वात् तथाच कथं पाक्षिकाभावः कथं वाते न विकल्पप्राप्तिर्मन्त्रस्य मि न्प्रकरणस्थत्वात्नहिवि

धिविहितेन सह मन्त्रप्रका
श्यार्थस्य विकल्पसमुच्चयौ
कुत्रचित् तस्मात्पक्षेप्राप
कत्वाभावेपि विकल्पसमुच्च
यो: प्रसक्तिमभिदधतान
धीतमीमांसाशास्त्रत्वं व्यज्य
ते नहीमानि शास्त्राणिमी
मांसातत्त्वविदोऽनधीत्य बो
धगम्यानि भवन्ति, किंच
पाक्षिकनिषेधस्याप्यनुवा
दित्वं कथं परशारोदितयुगभे
दव्यवस्थापकस्मृतेौस्वीकृ
तमिति, अनुवादत्वं चात्रम
न्त्रपदव्यपदेश्यवाक्यक
लापस्यपदान्तरेणार्थकथ
नत्वन्तच्चाराते गोधेउतपु
षघ्न इत्यादिपदानां कथंस

तिस्यपदे रम्यालम्भं गवाल
म्भित्यादिभिर्येकथनाम्
तस्माद्विधिमन्त्रविचारा
रम्भे कार्य नसिद्धेषि, पृ०२२
पं०५। मन्त्रब्राह्मणयो विरोधेम
न्त्रानुकूलं व्यवस्थापाएव मन्त्र
प्राबल्याधिकरणे निर्णीतत्वेने
ति, अहो अस्यापार्थकमभि
धानं येनचक्षुषि धूलिप्रक्षेपमि
वकरोति, नह्यस्तिमीमांसाया
स्त्रे मन्त्रप्राबल्याधिकरणं कुत्र
चित्, प्रत्युतास्मद्दृरस्य मन्त्राणा
मभिधायकत्वस्याधिकरणम
स्ति, तत्रपूर्वपक्षसूत्रम्, विधि
मन्त्रयोरैकार्थ्यमैकशब्द्यात्,
अ०१पा०१ अधि०८ सूत्रम्२८। अ
स्यार्थः। देवांश्चयाभिर्यजतेद

दाति चेति मन्त्रे यजते ददातीति
श्रूयमाणं पदं विधायकं नवेति
संशये पूर्वपक्षमाह विधीति,
विधिमन्त्रयोः विधिवाक्य मन्त्र
वाक्ययोः एकाख्यातयोरित्यर्थः
ऐकार्थ्यं विधिरूपैकार्थप्रति
पादकत्वम्, एकशब्दात्, ए
क जातीय शब्दात्,, अथ सि
द्धान्तसूत्रम्, अपि वा प्रयोग
सामर्थ्यान्मन्त्रोऽभिधानवाची
स्यात्, सूत्रम् २९ अस्यार्थः। म
न्त्रः। मन्त्रस्थाख्यातपदम्, अ
भिधानवाची, एकार्थप्रकाश
नमात्रपरम्, प्रयोगे, अनुष्ठा
ने, क्रियमाणे, तावदर्थस्मरण
मात्रसामर्थ्यात्, तदुक्तं वार्ति
के भट्टपादैः। एवमाख्यातश

ध्यानां त्वच्छब्दाद्युपबन्धनात् विधिशक्तिः प्रणश्येत तेसर्वे ऽत्राभिधायकाः इति, त्वदुक्त मन्त्रप्राबल्याधिकरणं चेत्तत्र सूत्रं वद किं मुधैव प्रतारयसि शास्त्रगन्धशून्यान्, किंच मन्त्रब्राह्मणयोर्विरोध एव न भवति कथं पुनर्मन्त्रानुकूलयुग व्यवस्था स्यात्, अतउच्छिन्नमूलत्वेऽप्यस्य विचारस्य, असम्बद्धपदपदार्थमात्रमग्रि मन्तूयामः। पृ० २२ पं० ८। न्याय मूलकश्रुतिस्मृतिविरोधेश्रु तिबलीयस्त्वमिति न्यायविष याभावेन प्रकृते गवालम्भादि विधेः प्राबल्यादिति, अहो स्खलितःपदेपदे पततीत्याभा

णकमनुसरति, किञ्चोः कोऽसौ न्यायोऽत्र यद्धि सद्भावेन गवालम्भविधेः प्राबल्यमभ्युपगच्छसि, श्रुतिस्मृतिविरोधे श्रुतिर्बलीयस्त्वन्यायस्य तु विषय एव, नहि कलिकालावच्छेदेन गवालम्भबोधकश्रुत्यर्थानुष्ठाने पराशरस्मृतेः प्राबल्यमभ्युपगन्तव्यम् स्यात् कल्यन्तर्गतजनेषु श्रौतकर्मानुष्ठानसामर्थ्याभावमालोच्य पराशरेण प्रणयनात्, नह्यर्थिनुसामर्थ्याभावेन श्रुतेः स्मृतितो दौर्बल्यं कल्पयितुं शक्यम्, तथाहि सामर्थ्यञ्च द्विविधं लौकिकं शास्त्रीयञ्च तत्र शास्त्रीयसामर्थ्यस्य सत्त्वेऽपि लौकिकानुप

नीत, अष्टसु प्रक्रमेषु प्रक्षालयो,
निमादधीत, इत्यादिरूपस्य सू
द्धेष्वभावात्, न तेन विधेः प्राबल्य
म्, लौकिकसामर्थ्यस्य विरु
त्वशरीरवलत्वभावात् मित्रवल
त्वधनवत्त्वादिरूपस्य कलिज
नेष्वभावात्, न तेनापि विधेः
प्राबल्यम्, एतल्लौकिकसाम
र्थ्या[वमा]भावो ह्येव त्रिकालज्ञैः प
राशरादिमहर्षिभिर्विहितस्या
श्वालम्भादेः परिवर्जनम
भिहितम्, अविरुद्धस्यैव लौक
स्य को विगुणत्वात् प्रत्युत
पशुवीजादिवधजन्यदोष
भागित्वमेवेत्यभिप्रेत्यस्मृतेः
प्रणयनात्तु मन्त्रप्रयोगे हि
सानिषेधं स्वप्रक्षालनविहित

यागो हिंसया विकल्पसमुच्चय
योरारो (?) प्योभयत्र दोषमभिलक्ष्य
तन्निषेधं कालिकालावच्छेदेन
विधिं च कल्पतिरिक्त कालाव
च्छेदेन व्यवस्थापयितुं स्मृतेः
प्रणयनमिति भावः। तस्मान्न
विधेरप्राबल्यमप्रामाण्यम्वा
भवितुमर्हति, अन्यथा शास्त्री
यसामर्थ्यस्य स्फूर्त्यादिष्वभावे
न विधेरप्राबल्यमप्रामाण्यं च
स्यात्,, पृ० २२ पं० १०। अनुमिता
र्थस्य साक्षाच्छ्रुतिबाधे अनुमि
त्यभाव इति मूलवेदाभावेन मूल
प्रामाण्योच्छेदेनैव स्मृतेरप्रामा
ण्यचिन्तने नस्वार्थोपर्यवसा
यित्वबोधनात्। प्रकृतेऽनुमा
पकमन्त्रस्य स्मृतेश्च ब्राह्मणा

दि प्राबल्यमिति, ॐ अहो कृष्ट

व्यमस्यासम्बद्धकथनम्। अनु

मीयते मूलवेदोऽनयास्मृत्येति

मुख्यस्यानुमानं स्मृतिरभिधीय

ते, अनुमितार्थस्य मूलवेदए

व तस्यानुमितार्थस्य मूलवे-

दस्यसाक्षाच्छ्रुतिवाध इति वि

रुद्धार्थः। किंच मूलवेदाभावे

नस्मृतेरप्रामाण्यचिन्तासिद्ध

पुनश्च मूलप्रामाण्योच्छेदे-

नैवेत्यसम्बद्धम्, मूलनिष्ठ-

प्रमात्वोच्छित्तिम्बदन्नप्रसक्त

प्रतिषेधमभ्युपगच्छति, मन्त्र

स्यानुमापकत्वं स्मृतेश्च ब्रा

ह्मण श्रुतितः प्राबल्यं पूर्वमे

व निरस्तमित्युपरम्यते,, पृ० २२

पं० १७। तथापि मन्त्रप्राबल्याधि

करणस्य स्मृतिप्रावल्याधिक
रणस्य च विरोधे उभयस मुच्च
यासंभवे विकल्पस्यादेव
ग्रस्तत्वेन स्त्री कर्तु म शक्य
त्वेन स्मृतेर्मन्त्रद्वयस्य च प्राणा
य्येनकल्पतिरिक्तानुगवती
विधिः। निषेधश्च कलिवि
षय इति व्यवस्थितेति॥ ॥
अहो अस्फुटे वस्फुटन्त
त्राप्यस्फुटमेव महान्त्य
धौरेवारब्धाकुत्र चित्स्फु
टन्तु दसर्वत्रासम्बद्धकथ
नेनैव पुस्तकपूर्तिं विधास्य
सि, प्रथमतो मन्त्रप्रावल्या
धिकरणस्यैवाभावः। पुनश्च
तेन स्मृतिप्रावल्याधिकरण
स्य विरोधः। तत्राप्युभयोः स

मुच्चयाद्यारोपः। सूत्रसमूहेधिकरणं कथन्तस्य विकल्पसमुच्चयौ पुनश्च श्रुतेर्मन्त्रद्वयस्यचैत्यसङ्गतम्, पूर्वंमन्त्रद्वयाभावात्। तस्मादेतच्चतुर्थमसङ्गतमिति सर्वैर्न कश्चिदपि मीमांसातत्त्वविदोऽभ्युपगच्छति, पृ०२३ पं०४। मन्त्रलिङ्गजन्यानुमितौ साक्षाच्छ्रुतेर्ब्रीह्यणौ पाद्याः सामान्यविषयहिंसायाः न कथमपि बाधकत्वम् प्रत्युत विशेषानुमितिबाध्यत्वमेव, अवच्छेदकावच्छेदेनानुमितौ सामानाधिकरण्येनबाधज्ञानस्य प्रतिबन्धकत्वेपि कलिविशेषावच्छिन्नसाध्यकानुमितौकल्यति

रिक्तकालावच्छिन्नसाध्याभा
वप्रकारकबाधस्य कल्प
तिरिक्तकालावच्छिन्नगोमेध
वैदिकविधिपूर्वकयागीयत्व
विशिष्टहिंसाज्ञानस्य वैदिक
त्वप्रकारकस्य कल्पातिरिक्त
कालावच्छिन्नयागीयहिंसा
विशेष्यकस्य तादृशान्यायक
ज्ञानस्य नबाधकत्वम् विभिन्न
कालावच्छिन्नविषयकत्वेन
ग्राह्याभावानवगाहित्वादितिॐ
अहोकोऽदृशोऽयं प्रतारकस्वत
न्त्रः।उच्छिन्नमूलमपिविचारं
नपरित्यजतिमतसुतंवारीवःन
खनेनकाचिदनुमितिरुपन्य
स्तायत्रनकस्यलिङ्गत्वमवेतः
अनुमानस्यमतोविषयत्वेन

लिङ्गदोषेष्योबाधादिभ्यश्चस्त
त्वात्, किंच श्रुतिस्मृतिप्रमाण
स्य शाब्दरूपस्यास्तिकमात्रशि
रोधार्य्यस्यास्माभिरभ्युपेतत्वा
त्किम्पुनरनेकदोषग्रस्तकाप
ल्पकलङ्कितानुमानप्रदर्शनेन
नापि मन्त्रे गोघ्नपदकर्षनादे
व गोमेधप्रयोगीयगोहिंसानिषे
धः प्रतीयते विधीयते वा निषे
धवाचकपदाभावात्, मन्त्र
स्याविधायकत्वाच्च, न वापू
र्वोक्तरीत्या गोहिंसकवध
त्वानुमितगोहिंसानिषेधा
पजनकत्वमात्रं गोमेधीय
हिंसानिषेधकं भवति, अ
स्तु तत्र पापजनकत्वं यागो
पकारकत्वं केन वार्यते, अ

त एव यागोत्तरं प्रायश्चित्त वि
धानम्, अन्यथा तत्कर्म विपा
कसमये तत्फलं दुःखमनुभवि
तव्यमेव अतएव चेन्द्रादिब्रह्मा
दिकृतदुःखं पुराणेतिहासे श्रूय
ते, किं च पशु च गुरु च पितृ
मातृश्च पतिघ्नी यज्ञ च पुरुष
घातिनी चादय अनेके शब्दा मं
त्रे ह्युपलभ्यन्ते विधिकाण्डे
चाने के विषय श्चोपलभ्यन्ते
तथा चापतिघ्नी भवेत्यस्य
विधेर्मन्त्रस्य पतिघ्नादिप
देन लब्धं कुस्त्रीत्वं विवप
तिर्हि सकलबधत्वानुमित
पतिर्हि सानिष्ट पापजनक
त्वेनेत्यारम्य विकल्पसमु
च्चयाद्यारोप्य विकल्पस्याष्ट

दोषदुष्टत्वेन समुच्चयस्य भावाभावविरोधेनासंभवाच्च
युगभेदव्यवस्थाप्राप्तौ कल्यतिरिक्तकालावच्छेदेनापतिघ्नीकलिकालावच्छेदेनच
पतिघ्नीस्यादित्यर्थबोधकस्मृतिःपराशरादिभिःकथंन
प्रणीता, तस्मादेतत्सर्वं शास्त्रानवबोधनिबन्धनविडम्बना
मात्रम्, किंच संन्यासघ्नेदेवरात्सुतघ्ने अश्वघ्ने इत्यादीनांमन्त्रेऽनुल्लेखात्कथं कलिका
लावच्छेदेन निषेधः। कथमेकस्यैवगोहिंसानिषेधस्य पाक्षिक प्राप्तिः। अतोऽश्वालम्भादीनां
यथाऽस्य मन्त्रस्य मूलत्वाभावेपि कलिकालावच्छेदेन निषे

षः कल्पतिरिक्त कालावच्छे
देनच विधिलक्षैव गवालम्भ
स्यापि कथंन स्वीक्रियते परा
शुक्लमतेरविशेषात्, तस्माद्व
गोवादि पदेन मनुष्येन गोहिं
सा निषेधो विधीयते मन्ववेदया
ऽविधायकत्वात्, नापि मन्वाद्
गोहिंसानकर्तव्या गोहिंसक
स्य वधः न विधाना दित्यनुमि
तिः नापि गोहिंसा पापजनि
का गोहिंसकस्य वधन्त विधा
नादित्यनुमितिस्तु, मन्वत्वा
विधायकत्वाद्वेत्व सिद्धेः। हेत्व
सिद्धत्वंच विशिष्टग्रहत्व व्या
पक प्रतियोगिता निरूपित प्र
तिबन्धकतावच्छेदकत्वावच्छि
न्न विषयिताकथ सेवत्वम्।

असिद्धिसामान्यन्तु पक्षताव
च्छेदकविशिष्टपक्षोद्देश्यकहे
तुतावच्छेदकविशिष्टहेतुप्र
कारकसाध्यतावच्छेदकाव
च्छिन्नविधेयकानुमितित्व
व्यापकप्रतिबध्यतानिरूपि
तप्रतिबन्धकतावच्छेदकत्वा
वच्छिन्नविषयिताकधर्मत्वा
वच्छिन्नविषयकप्रतीतिवि
षयतावच्छेदकप्रकृतसाध्य
व्यापकतावच्छेदकधर्मघटि
तान्यतरवत्त्वमसिद्धत्वम्। किं
च गोहिंसारूपे पक्षे गोहिंस
कत्वस्वरूपहेतोरभावात्स्वरू
पासिद्धिस्तत्र च गुणत्ववति
ज्ञाने, तत्र च विशिष्टपक्षकवि
शिष्टहेतुग्रहत्वव्यापकप्रतिब

ध्यता निरूपित प्रतिबन्धक
तावच्छेदक त्वावच्छिन्नवि
षयिताकधर्मवत्त्वम्, अत्रच
गोहिंसात्वावच्छिन्नपक्षकपा
पजनकत्वावच्छिन्नसाध्यका
नुमितित्वावच्छिन्नप्रतिबध्य
तानिरूपितप्रतिबन्धकताव
च्छेदिका विषयिता गोहिंसक
बध्यत्वाभाववती गोहिंसेति
स्वरूपासिद्धिज्ञानीयविषयि
ता तद्रूपावच्छिन्नत्वन्तत्रवर्त्तते
अत्रगोहिंसकस्यबध्यत्वं पुरु
षे नतु गोहिंसारूपे पक्षेतस्य
सत्त्वमिति स्फुटंस्वरूपासिद्ध
त्वं कथंनास्यबुद्धिगम्यमिति
चिन्त्यम्, अन्यच्च प्रथमतोम
त्रलिङ्गजन्यानुमितिरेवा

सिद्धानुमत्तत्र ब्राह्मणीया
याः सामान्यविषयहिंसायाः
कथमपि न बाधकत्वमिति त
त्तिस्वीयः। नहि गोमेधीयमु
त्साकमालभेतेति ब्राह्मणीया
याहिंसायाः सामान्यतं समव
तीति, अहो मन्त्र लिङ्ग जन्यां
विशेषानुमितिं बदन्नन्धा ब्धि
रः कर्षतीति न्यायमनुसरति
पृ०२३ पं०७। अवच्छेदकावच्छेद
नानुमितौ सामानाधिकरण्ये
न बाधज्ञानस्य प्रतिबन्धकत्वे
पि कालविशेषावच्छिन्नसा
ध्यकानुमितौ कल्पतिरिक्त
कालावच्छिन्नसाध्याभावप्रक
रकबाधरूपस्य कल्पतिरिक्त
कालावच्छिन्न गोमेधवैदि

कविधिपूर्वकयागीयत्वविशि
ष्टहिंसाज्ञानस्य वैदिकत्वप्रका
रकोभयकल्यतिरिक्तकालाव
न्नयागीयहिंसाविशेष्यक
स्यवातदुन्मायकज्ञानस्येन
बाधकत्वं विभिन्नकालावच्छि
न्नविषयकत्वेन ग्राह्याभावान
वगाहित्वादिति अहो कीदृ
शोऽयं विभ्रान्तोयश्चाप्रसक्तप्र
तिषेधं कुरुते नहपत्रमन्त्रवा-
क्यादारभ्येगोघ्न इत्यादेः कलि
विशेषावच्छिन्न गोहिंसानिषे
धसाध्यकानुमितिः। यत्रकाल
ञ्जकाक्यादौ मेधीयोब्राह्मणमा
लभते इत्यादिरूपाप्रामाण्यस्य क
ल्यतिरिक्तकालावच्छिन्नगो
हिंसाऽभावाभावस्य हिंसारूप

स्यबाधस्य, कल्यतिरिक्तका
लावच्छिन्न गोमेधवैदिक
विधिपूर्वक यागीयत्वविशि
ष्ट हिंसाज्ञानस्य वैदिकत्वप्र
कारकस्य कल्यतिरिक्तकाल
वच्छिन्न यागीयहिंसाविशे
ष्यकस्य तदुन्नायकज्ञान
स्यवा विभिन्नकालावच्छिन्न
त्वेन ग्राह्याभावानवगाहित्व
हेतुना नबाधकत्व मित्येवं
प्रतिबन्धकत्वं निषेधयति
यदि मन्त्रवाक्यात्कलिकाल
विशेषावच्छिन्न गोहिंसाऽ
भावसाध्यकानुमितिः स्यात्त
दाभवेदपि तादृशब्राह्मण
वाक्यलभ्यस्य तदुभयविशे
षणविशिष्टस्य गोहिंसाऽ

यस्य बाधस्य तज्ज्ञानस्य वा
प्रतिबन्धकत्वं शङ्क्यते तथा
चकिंचित्कालावच्छिन्नत्वे
न साध्याभावानवगाहित्वा
दितिनबाधकत्वमित्येवन
निषेधः। नहि तावन्मन्त्रस्य
कलिकालावच्छेदेन हिंसा
निषेधविधायकत्वम्, ना
पिमन्त्रे निषेधः प्रकाशते
निषेधवाचकपदाभावात्,
नापिबाधस्य विशेषणं च
तुष्टयप्रयोजनम् कथंतु
नमैत्र्यादिजन्याऽनुमि
तिः। यत्र ब्राह्मणत्वावच्छे
दहिंसायां बाधं ब्रवीति
श्रुतिश्चवच्छेदकावच्छेदना
नुमितौ सामानाधिकरण्ये

नवाधज्ञानस्य सामानाधि
करण्येनानुमितौवा: वच्छे
दकावच्छेदेनबाधज्ञानस्य
प्रतिबन्धकत्वम्, अस्तु नाम
यथाप्यनुमित्यभावः कथं
पुनरत्राप्रसक्तप्रतिषेधं ब्रू
ते, तस्मान्मन्त्रलिङ्गजन्यत्वे
न पराशरस्मृतिवाक्ये मेधी
यहिंसाकलौ नकर्तव्या मन्त्रो
क्तनिषेधादि, अनुमितिमानः
कथं नोपहसनीयः स्यात्, न
हि मन्त्रो निषेधबोधकं पदम्,
नापि मन्त्रस्य विधायकत्वं नि
षेधविधायकवेदस्य मन्त्रवेद
तः पार्थक्यात्, मन्त्रस्यावि
धायकत्वाच्च; नापि मन्त्रो नो
हिंसकस्य वधार्थं तदव-

न्यपदाभावात्, गोहिंसकस्य वधावधिरदण्डानभिधानाच्च, नापि गोहिंसायाः कस्यचित् कालेऽकर्तव्यता पराशरस्मृत्युक्तनिषेधादनुमितिः स्मृतेरशक्यत्वाभिप्रायेण प्रणयनात्, पृ० २३ पं० १४। तत्कालानवच्छिन्नताहशब्राह्मणवाक्यावगतकर्तव्यता गोहिंसाविषयकेति ज्ञानस्य च भ्रमत्वाद्यनुमितनिषेधेन मांसाशिस्मृतिसाक्षात्प्रतिषेधेन च विरोधात्केनचिद्विषयकर्तव्यस्यावगत एव तस्याविषयकत्वेनाप्रामाण्यस्तु हादशगहीताप्रामाण्यकतद्धर्मकालदेशानवच्छिन्नप्रतियोगिताका

मात्रज्ञानस्यैतत्कर्म देशकाला
वच्छिन्नप्रकाशता कुतः प्रति
प्रतिबन्धकत्वादिति अहो
प्रकृतिर्दुर्गानुसृजेति किंव
दन्तीं सत्यापयति केचित्स्वस
म्बन्धं स्वदन्त्येव न तु लिखन्ति
लेखने त्वस्यैव साहसन्दृष्टन्त
त्रापि मुद्राप्य प्रकाशने, किं
भोः। कलिकालान्न बिभ्यो ना
ग्नो हिंसा विषयका या गोमे
धीयो ब्राह्मणमालभेतेति ब्राह्म
णवाक्यावगतकर्तव्यताया
ज्ञानस्य कथं आराने गोषड्
ति मन्त्रानुमित निषेधेन वि
रोधः कथं वा मांसादित्य
नेन विरोधः। यद्यनयोर्विरो
धोऽभ्युपेतव्यो ब्राह्मणवाक्ये

न गोमे धीयहिंसा विधायके
न तर्हि मदगतत्वेदवर्त्मीः नभि
लषितत्वेदसम्प्रदायोऽकृतगु
लकुलवासोऽनासादितब्रह्म
सम्पत्तिर्भवानित्येवास्माकं
निश्चयः। अत्रापि मन्त्रानुमि
तनिषेधोक्तिनिषेधेनच वि
रोधोक्तिस्त्वत्यन्तशास्त्रसं
स्कारशून्यत्वमस्य व्यनक्ति
द्वितीयेन माहिंस्यादित्यनेन
च विरोधोपरते निषेधवेदत्वा
त्स्येतितत्परिह्रियते अत्र
विधिनिषेधवाक्ययोर्न क-
श्चिद्विरोधः उभयोर्भिन्न वि-
षयत्वात्; विरोधे हि वलीयसा
दुर्बलं बाध्यते नचेहास्ति कश्चि
द्विरोधः। उदाहरणमालभेतेति

वाक्येन हिंसा क्रतूपकारिणी त्येव बोध्यते न त्वनर्थकरत्वा भावः। मा हिंस्यादिति निषेधे न च हिंसाऽनर्थकरीत्ये व बोध्यते न तु यागानुपकारि णीति, एवंच भिन्नविषयत्वान्न विरोध इति भावः। तदुक्तं भट्टपादैः यो नाम क्रतुमध्यस्थः कलञ्जादी नि भक्षयेद् न क्रतोस्तत्र वैगुण्यं यथाचोदितसिद्धितः इति, अत्र भट्टाभिप्रायो भामतीव्याख्यानेक ल्पतरुकारैरयमभिहितः कल ञ्जभक्षणादिनिषेधानां पुरु षार्थत्वात्तदतिक्रमे पुरुषस्यै व प्रत्यवायो न क्रतोर्वैगुण्यं य थाविहितस्य तस्य सिद्धेः। नहि क्रतुशेषः प्रतिषेधो यतस्तदति

लङ्घनात्कतो वैगुण्यं स्यादिति
पदिदि गोमेधीयो स्रागमाल
मेते तिवाक्याद्धिंसानानर्थंज
निकेतिवाक्यार्थः स्यात्, परि
वामाहिंस्यादितिवाक्याद्धिं
सानगोमेधया गोपकारिकेति
वाक्यार्थः स्यात्तदा भवेदपि त
यो विरोधः। पूर्ववाक्यस्य हिंसा
यागोपकारिकेत्यर्थत्वात्, उ
त्तरस्य च हिंसानर्थजनिकेत
र्थत्वाच्च भिन्नविषयत्वे नन
विरोधः। विरोधाभावेन च नवा
ध्यबाधकभावः। तस्मान्न मन्त्र
लिङ्गजन्याऽनुमितिर्न वा गो
हिंसानिषेधस्तस्मात्स्वाग्रहः। यं
पाक्षिकप्राप्तं पराशरस्मृतिः
कलिकालावच्छेदेन व्यवस्था

पयेत्, नापि मन्त्रस्याप्राप्तप्रा
पकत्वम्, अप्राप्तप्रापकवेदभा
गस्य विधिलक्षणत्वात्, नाप्य
ज्ञानुमितयः काश्चित्सर्वेष्वाके
रेव विधीयन्ते, निषिध्यते च मु
धैवायं विभ्रान्तः सर्वतन्त्रविरु
द्धमभिदधानो न जिह्रेति नापि
विरमति यावन्नस्वीयं पाण्डि
त्यमपूर्वं व्यनक्ति, इति चिन्त्यम्
यदुक्तं कलिव्यवस्थाविषय
ज्ञाने नाप्रामाण्यग्रहादगृही
ताप्रामाण्यक तद्धर्मिकालदे
शावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभाव
ज्ञानस्य तद्धर्मिकालदेशावच्छि
न्नप्रकारताकबुद्धिं प्रति प्रतिब
न्धकत्वादिति। अहो अयमेत
न्न विजानाति यदीमां कलिवि

षयनिषेध व्यवस्थामन्योपिप
स्यति तर्हि कथमुपहासो भवि
ष्यतीति, परापरास्फूर्तिदर्शने
नाप्रामाण्यज्ञानं श्रुतौ न भवि
ष्यति त्वत्कृतया ऽव्यसमञ्जव्य
वस्थयावेदेऽप्रामाण्यग्रह इति
तु चिन्त्यम्, इयञ्च व्यवस्था वि
द्वद्भिर्विशेषतो निरीक्षणीया प
श्चात्स्वयमेव ज्ञास्यन्त्ययं के
नोपमेय इति, किंचानेन यत्प्र
तिबध्यप्रतिबन्धकभावो देश
कालघटितःसत्त्वाति विरुद्धो
नहि कार्यकारणभाव इव प्र
तिबध्यप्रतिबन्धकभावोपि दे
शकालघटितो भवति, एतस्य
तत्वं नैयायिका एव विदन्त्येव

जानन्ति। अत्र यद्रहस्यं न तं लि
खामो यदि कश्चिन्न्यायतत्त्ववि
दागच्छेत्तर्हि सामान्यतोऽनुवे
तस्मृतिवध्यप्रतिबन्धकभावं
देशकालादिघटितं न स्वीक
र्यमिति दर्शयामहे। यथा
हि घटाभाववद्भूतलमिति ज्ञान
मग्रहीताप्रामाण्यकं घटवद्भू
तलमिति ज्ञानस्य प्रतिबन्धकम्
तद्वत्ताबुद्धिं प्रति तदभाववत्ता
बुद्धेस्तदभावव्याप्यवत्ताबुद्धे
श्च प्रतिबन्धकत्वात्। पृ० २४ पं
२। न हि कालिकाभाववृत्तिवि
षयक ज्ञानस्य तदभावविरो
धित्वं। एवं च मूले कपिसंयो
गाभावज्ञानसत्त्वेऽपि संयोगव
त्ताबुद्धेरुदयादिति ॥

१७

अहो द्रव्यत्वजातिमदवच्छेदकत्व

न्यम्, यत्पूर्वि देशकालघटितस्व

निष्ठप्रतियोगिताकाभावस्वरूप

लघुत्वम् निवेशयति नहि का

लिकाव्याप्तिविषयकज्ञा

नस्य तदभावविरोधित्वं दृष्ट

चरमिति, अत एवोत्तरमुदाह

रणमपि विषमं मूले कपिसंयो

गाभावज्ञानसत्वेपि वृक्षे संयो

गवत्ता बुद्धेरित्यादि, अत्राय

मस्याभिप्रायः कालिकालाव

च्छिन्नगोमेधीयहिंसात्वाव

च्छिन्नप्रतियोगिताकाभाव

ज्ञानस्य पराशरस्मृतिवाक्य

जन्यस्य कल्पतिरिक्तकाला

वच्छिन्नगोमेधीयहिंसात्वा

वच्छिन्नप्रकारताकबुद्धिं

१८ प्रत्युत्तेजकत्वोगामाल्लघुत्वं तेयम

श्रुतिवाक्यजन्यां प्रतिप्रतिब
न्धकत्वाभावः भिन्नकालाव
च्छिन्नभावाभावयोरविरोधा
त्, कलिअवस्थानङ्गीकारे
श्रुतिवाक्यस्मृतिवाक्ययोरे
क कालावच्छेदेन द्वयो
र्विरोधेन प्रतिबध्यप्रतिबन्ध
कभावः स्यादित्यपि प्रायः। य
दनेन सामान्यतः प्रतिबध्यप्र
तिबन्धकभावे कालदेशाघटि
तत्वमभिमतं तन्न्याय्यतत्वान
भिज्ञत्वमस्य व्यनक्ति दैशिक
कालिकाव्याप्यवृत्तिभावाभा
वयोः प्रतिबध्यप्रतिबन्धकभा
वे भवेदपि प्रयोजनं नहि ल
वैत्र तद्धर्मी देशकालावच्छिन्न
प्रतियोगिताकाभावज्ञानं तद्ध

ग्नि देशकालावच्छिन्न प्रका
र लोकबुद्धिं प्रतिबन्धक मिति
सामान्यतस्तन्न्याय विदोऽभ्यु
पगच्छन्ति, अथ मवस्थाऽभिप्रा
यं दर्शयामः। अत्र मन्त्र ब्राह्मणयो
र्विवादाभाव विधायकत्व मभ्युपग
म्यसाक्षीभूतया पराशरस्मृत्या
तयोर्विरोधं परिहर्तुं गोमेधीय
हिंसाऽभावं कलिकालावच्छे
देन व्यवस्थापयति, ब्राह्मणवा
क्य प्राप्तं हिंसाभावं च कल्पति
रिक्त कालावच्छेदेन व्यवस्था
पयति, मन्त्र प्राबल्याधिकर
णन्यायेन च मन्त्रस्य प्राबल्य
मभ्युपगच्छति, अस्यतु मू
लोच्छित्तिः पूर्वमेवास्माभिर्वि
हिता, नहि मन्त्रस्य निषेधवि

धायकत्व मिथ्यं येन हिंसाऽभा
वस्य प्राप्तिः स्यात् प्राप्तत्वेन च
श्रुतिविहितयाहिंसया विरोध
स्स्यात् विरोधेन च साक्षीभूत
यास्मृत्या मन्त्रप्राप्तहिंसानिषे
धस्य पाक्षिकी प्राप्तिः स्यात् प्रा
प्ताच कलिविषयत्व वस्या स्या
त्, नापि मन्त्रे निषेधः प्रतीयते
न वा गोहिंसकवधत्वेन मन्त्रा
क्त हिंसायां पापजनकत्वानु
मानम्, गोहिंसकस्य वधाव
घिदण्डाभिधानाभावात्, न वा
मन्त्रप्राबल्याधिकरणं मीमां
सायां कुत्रचित्, नापि विकल्प
समुच्चययोः प्राप्तिः। नवाऽपि
करणयोरेव विकल्पसमुच्चये
लक्षसमूहस्यैकव्यादेरोस्त

स्ये क विषम स्य साध क त्वेनो
से न र स्य स्य त्वस्ये वा धिक
या त्वा न्कथ न योर्व धिकर
समुच्चये स्यातम् । इत्यादि
सर्व्वत्रिकु माण्डाय्यितं सिक
त्वात् पा यितत्स्य प्रतिपदं रवण्डि
तत्वा मात्र पुनरपे ह्येति । ए०२४
पं०५ । वर्त्तमाना दिपर्व्वतवि शे
षकर्ता दि न्यामेद यांश्चे ति
अत्रवर्त्तमाना दि पर्व्वतवि शेष
के स्य सर्व्व त्वं विधिभ ति क
त्वात् । नादि वर्त्तमाना दीस्य स
पर्व्वतादि पदेन समासः । तथाच
वार्त्तमानिक पर्व्वत वि शेष्यके
तिवाच्य चवावर्त्तमान कालि
कादिपर्व्वतविशेष्यके तिवावा
च्यम् । नेना सम्बद्ध कथनेन

आकरणग्रन्थाजौकं निखूत
स० ११ पृ० २४ पं० ७। यद्यपि अव
स्यातः पूर्वं श्रुतेः साक्षात्स्मृति
प्राबल्येनमन्त्रलिङ्गापेक्षया
तदनुमितिबाधकत्वेन च प्रा
बल्येन नकालविलम्बत्वमि
ति स्यात् तथापि स्मृतेः स्म
त्यनुमितिबाधकत्वं नसंभव
ति प्रसक्ते रुपस्थानचैकल्पि
परीतं बलावलमिति न्यायेन
मन्त्रलिङ्ग स्थानचैकल्पे त्वे
बलवत्त्वेन अवस्था नत्वाप्र
मुख कालज्ञानस्य प्रोतत्वका
लविषयत्वेनावधारणादिति
॥ अहो अयं श्रुतिस्मृतौ बला
बल प्रकरणे अनुमिति प्रसङ्ग
मारोपयन्स्वस्मिन्ननुमान लो

रात्रैव व्यञ्जयितुमिच्छति न हि
तन्मानसेनानुमानेन व्यज्यते मा
यि मानसेन तेन विषयसिद्धिः
कोऽहेतद्भुते श्रुतेर्न स्मृत्यनुमि
तिबाधकत्वं यदा हि श्रुतेः स्मृति
बाधकत्वमेव साक्षात् स्वीकुर्व
न्ति मीमांसकादयः किं पुनः
स्मृत्यनुमितिबाधकत्वं श्रुते
र्न संभवतीति किंच बलाबल
त्वमग्रे श्रुतिस्मृत्योर्बाध्यबा
धकत्वं च तदनुमित्योरिति वि
चित्रम्, किंच मन्त्रलिङ्गस्य
शब्दसामर्थ्यरूपस्याप्यत्रै
व सार्थक्यं स्वीकरोति यत्र
किंचिदप्यर्थप्रकाशनं ना
स्तीत्यपि चित्रमेव, किंच
प्रमुख कालज्ञानस्य श्रौत

स्येति भुवन्के गोपमेयइति
न विजानीमः। अत्र प्रथमतः
कालज्ञानं मुख्यं तिनज्ञान
स्य प्रमोषः संभवति नापि
कालस्य केवलं प्रमोषः संभ
वति श्रुतौ कलिवाचकप
दाभावात् यस्माधि मुख्यो
यात् प्रमोषस्तु पूर्वतत्त्वस्यै
व संभवति नह्युपनयनसमभि
धानधारातो विरमति यावन्नसो
यमनुपलब्धिप्रभावन्द्योतयति,
प्रत्युत ब्रह्मौ कलौ पञ्चविवर्जे
येदिति कलौ न पलपैत कमिति
च कालवाचकं कलिपदमस्ति
तदर्थं प्राक्षी यलो कि कसाम
र्थ्य पाः कुत्रचित्कलयगतज
ने बुसत्वं वे सदा श्रौतकर्मानु

स्या नकाले मुख्यान्तु न तु स्मार्त्ते
भावकाले ऽपीति न स्या कल्यति रिक्ति
कालस्य प्रमोदः । पृ० २५ पं० ११
खण्डयति घेदकं हि प्रमोदे प्र
त्यक्षविक्षेप विसंयोग ज्ञानं न मूले
उपि संयोगाभावज्ञान विरोधिव
स्तुतेः किं घेदका दितिद्र अहे
ऽपीहत्रोऽथवा ह्लिकः यदीहसा
ज्ञानं न स्यात् हि त्रिदपि योग्यता
कयं निर्धारितास्यात् अत्रा गा
र्हदपि भावाभावयोः विरोधे
व घेदकभेदस्यैव प्रयोजकत्व
म् भावाभावयोरेकत्र वृत्त्यपि
मेवावच्छेदकस्वीकारात् अय
न्त्रतस्यावच्छेदकदेशास्य प्रमो
वं सर्वोनुभवविरुद्धं सर्वतन्त्र विरु
द्धञ्च ब्रूते असम्बद्धं के चित्

त्तीव दन्ति न तु लिखन्ति लिख
न्ति चेद् ज्ञानानन्द पुन्नीलिङ्गो ऽ
प्रदर्श्य प्रकाशयन्ति प्रकाशि
तन्येव ज्ञेयाः ज्ञनता भवन्ति न
पुनस्तत्पाठकाऽने प्रयत्ना भवन्ति
ततो पथि कालरोप हास भयात्
अस्मिं श्लोक विपरीत म० १ पृ० २५
पं० १९। नन्वादि पदेन रैत आदि
होमस्य तथा सं ग्रह ध्यान,
अजावधादि होमतुल्यत्वादि
तिक्कः अहोलोक म विना तुल
भते, यद्दाहि कोऽस्माहैतो हु
रामांसरैतो भङ्ग त्यादेहि धाव
कत्वादि त्यत्रलाघाहेवेतः प
देन गृहीतस्योपपत्तिः कार्यो
भविष्यत्येव किमग्रादि पदस्या
पस्योपपत्त्या अत्र तु चाल्प

लौ चर्मकारी च मातङ्गी पुल्क
सीतथा श्वपचीरजकी चैव
कैवर्त्ती विप्र योनिके आदीनं
मेतत्स्त्रीणां योनिस्पर्शित
तो यत्तर्पणस्य योनि जिह्वा प्रदे
पपूर्वकमन्त्रजपस्य योनिर
सलेह्यनादेश्चोपपत्तिः का
र्य्याः, किंचाजावनादिलेमतु
ल्यत्वं स्वधीर्य्ये लोमस्य यदभि
दधाति तदपि लास्यास्यदमे
वर्णहित तुल्यत्वं रेतोलोमस्य
तच्छिष्टभक्षणस्य च संभवति
वपालोमस्य विधिविहितत्वात्
अग्निना हविरितितिलोवपा
नां याज्यानुवाक्या, ३० का०
१५।६। इतिसूत्राच्च, अत एव
तत्र प्रापास्य वेधकत्वेन प्रय

स्यधर्मर्थवादत्वात्कथं प्रजापति
रात्मनो वपामुदखिदत् इत्युपक्र
मात्। कथमनुपलब्धिभावे
पि विधिविहितेनावपाहोमे
नरेतो होमस्य साम्यप्रतिपादय
ति। कथं चावपाहोमसोमेनाज्यौ
रसोरेतःपरिपोषतुल्यत्वं चेत्प्रयो
जिह्वालितनोयतर्पणस्य। क
थं वाऽऽवपाहोमस्य तत्तुल्य
त्वं चेद्यथा यो जिह्वाग्रे प
द्वैकमन्त्रजपस्तोत्रमिथ्येऽ
यमिति। १ पृ० २५ पं० १२ अथ
वेधाहो गणनेत्यादिमन्त्रे
लिङ्गहस्तग्रहस्य हृदयेऽर्थ
पतिगुह्येऽथेत्यादिना हृदय गु
दावधदानस्य गोपथात्सौभाग्य
ये दक्षमेधामीवतलप्रकरणे इ

तिष्ठ अत्रायमस्याभिरायः ।
मस्याय जुर्वेद मन्त्र निरुक्तकेय
प्रकरणे तदन्तर्गति पाठोवत
प्रकरणे च गणानान्त्वा गण
पतिं हवामहे प्रियाणान्त्वा
प्रियपतिं हवामहे निधी
नान्त्वा निधिपतिं हवाम
हे वसो मम आहमजानि गर्भ
धमात्वमजासि गर्भधम् । इति
मन्त्रे हे अश्व गर्भधं गर्भन्धा
ति गर्भधं गर्भधारकं रेतः अहं
आ अजानि आहृत्य क्षिपामि
अज गतौक्षेपणे च लोटि रूपं
तं च गर्भधं रेतः आ अजासि ।
आहृत्य क्षिपसि, अन्याछद
रत्रौपधीनाम सघार्थं म
मसंस्कारायसूत्रने पावत

पाणिगस्याः स्वसारं प्रतिवा
क्यन्तावदश्लील भाषणम्, अ
त्रापि रेतो विषयस्तथाऽस्मा
कं वा मिनामपितन्भ्रमवतु रेतो
होमविषयइति, अत्रोच्यते,
नहि तावदेमो रेतसाऽत्रवि
हितो नवा होमशिक्ष्यरेत
सोऽभ्यर्णं विहितम्, यदि
लोकसिद्धं गर्भधारकत्वप्र-
योजनन्तदेवाऽस्य संस्कारप
सुरू स्पति किमन उपन्यासः
अत्र यदश्लीलभाषणंतलि
खेदं पारयामः। गर्भधारकत्वं
यद्रेतस उक्तन्तु परमात्मनो
ऽपत्यस्य राजमानिकरेत सि
पुत्रजननशक्तिसम्पादनमा
त्रसंस्कारायैवेति, ननु परो

रक्षरस्य कथं परमात्मस्वरूपत्व
मिति चेत् यज्ञस्य मुख्याङ्गत्वा
द्यज्ञो वै विष्णुरिति श्रुतेः । अत
एव बृहदारण्यके अक्षोभित्वा
ध्रौति अग्नः प्राणो ह्यस्यो
वै विष्णुरिति श्रुतेः । अपि
चित्स्वाङ्गे च यजमानस्य वि
राजोऽङ्गं इङ्गितकारित्वाच्च वि
राद्रूपत्वमिति उक्तात्मस्य
स्य गेयशिरः सूर्यश्चक्षुर्वा
तः प्राणो व्यानम् निर्दिष्टानद
इत्यादिनेति, अत्र यद्यपीत्य
मासेन चन्द्रप्लुतिश्च कर्क
मस्य संस्कारायतनमुपलीक
कैकं प्रतीयते, उत्तरमन्त्रेत
प्रतिपादनात्, मन्त्रस्य, द
धिकांशो अवतारितं जिघो

रश्वस्य वाजिनः सुरभिनो मु
खा करत् प्रण आयूंषि तारि
षत् ३२। अथ मन्त्रार्थः। यत्र द
धिक्राव्णः अश्वस्य संस्कारार्थ
मश्लीलभाषणमकारिषं अ
कार्षं कृतवन्तः किंभूतस्य जि
ष्णोः जेतुः। अश्वस्य अश्नस्य
व्यापिनः। वाजिनः ओषधीम
य संचलनवतः। वेगवतः तत्
सुरभीणि सुगन्धीनि अश्लील
भाषणेन दुर्गन्धीनि मुखानि
भवन्ति पापहेतुत्वात् नोऽस्मा
कं करत् करोतु यज्ञ इति शेषः
आयूंषि तारिषत् प्रतारिषत्
प्रवर्धयतु चेति। अत्र चेतेरव
तद्भाषणजन्याशुद्धिर्मन्त्र
स्वमुखैः प्रार्थितत्वादिति।

अन्या अपि लोके यावन्त्यो भो पितः सर्वासामस्यैव भगवतः पत्यस्तस्यैव स्वरूपाश्च मम हि स्थूलोपाधेः समष्टिस्थूलोपाधेरैक्यात् प्राणिनां कर्मफलभोगाय सृष्टाः। अतएव तत्पतीनामंशत्वं नः पतिरिति तथा चकथमेकरूपेस्वस्मैवा ? तान्यंकर्मा शाङ् क्षेपकामभार्यावाच्यकर्मतो ... मारे पश्यसि, अविद्यावस्तुहेतोर्वविभिन्निवे धर्मय ... पि प्रवर्तमे मा परमात्मरूपे भगवत्यमेरा ह्रीमुहित्य अभिचारं शाङ्किरः पदार्थमात्रस्य तद्रूपत्वादिति भावः किंचाभ्यीलाभा हृषेन तु वो स्याद्

का श्लीलकर्मणः स्मारकत्वेन
हास्ये संस्कारधायकत्वं च येन
श्लीलभाषणप्रयोजनम्, तेन
स्मरत्यश्वो भगवान् अमियंम
हि षीडुत्रमिच्छतीति तत्रस्तु
त्रोऽस्यां महिष्यां भूयादित्यु
पक्रमणं श्लीलभाषणम्,
न तु सर्वैश्लीलैः श्लीलभा
षणं देवलोपासनादौ स्वयम
र्वसमिच्छारि कल्पितं स्वीक
रणीयं न स्मात् द्वेवाक्यानन्त
रपादश्लीलभाषणाभंवस
का इति न तु लाभाहान वश्ली
लकर्मापि न त्राणामपि धा
वकर्त्तारः नायेतु षाणाल्या
दिकुलस्वकाकुलीवकवो
ऽपाल्यौ पाणिजिहृयाः चोनिले

हनादि कर्मसाध्या देव विहि
तं तेते हि मार्ग्दि की तै ति०११ पृ०२६पं०
२। वे ष प्रवर्गीतां मुक्त्वा लं एवा:
पयति प्रजाप तिर्हिं स्थे ति० मार्ग्य
वन ११ । ७ । स्त्रैण स्फुटमुक्तं
वीर्थ दान्न लव प्रशंसा दिल्लाभा
दिति० अत्रहि प्रजापति ईहि
हकृतरि विहितात स्माल्लाप
तेः परमात्मनः सकाशात्पत्नी
यजमानि निष्ठ स्थैर्य वीर्यदान
लक्षणदी पते तसि पुत्रोत्पादन
सामर्थ्यं प्रार्थयते याज मानि
क वीर्य मात्रस्य प्राप्त्वेपि पुत्र
जनन सामर्थ्य वैशिष्ट्येनवी
र्यस्याप्राप्त्वात्तथा विधि प्रमाण
मात्वं प्रजापते हृत्स्पा त्वैय
प्राप्तांश परी पूर्णार्थ प्रार्थयते

न तु साक्षाद्ज्ञातुं शीलमाहीर्थे
लामिमिति पुष्येवते व्या मे हः। पु
० २६ पं० ६। वस्तुतस्तु ज्योकस्मारे
तो होमादेयौगिकत्वलक्षणा
गिहोमरूपेति ॥ अहे चरसेन
सि० प्रान्तयति, हन्तमोः, संप्र
ति येगिजनकर्मणिमम
त्ति रोभावयितुमिच्छसि, अ
स्मेधकर्मणितु नतिरोभूतः
नहि तत्रापि विश्रान्तिर्भिन्न
विषयत्वात्, पृ० २६ पं० ८ प्रस्तु
ताग्निर्मूर्धादिवः ककुत्पतिः
पृथिव्या अयं अपा थरेता थ
सिजिन्वति इति मन्त्रेण सोमे
ऽग्निस्तुतौ विनियुक्तेन रेतः प्री
णनस्य श्रोतत्वादिति, ॥ अ
त्रेदमुचमस्या ज्ञातामित्तमिता

मित्थानम्, यद्यपि रेतसा श्रोण
तं प्रकाशयते, अस्यायमर्थः। अय
मग्निः अपां रेतांसि जिन्वति सुरो
काद्गुहिरूपेण पतन्तीनामपां रे
तांसि साराणि व्रीहियवादिरूपे
ण परिणतानि जिन्वति प्रीतिक
र्मा प्रीणयति वर्धयतीत्यर्थः।
यद्वा अपां रेतांसि कारणानि जि
न्वति पुष्णाति आहुति परिणामे
न वृष्टिं जनयतीत्यर्थः। ते वा एते
आहुती उत्क्रामत इति श्रुतेः। किं
भूतोऽग्निः दिवो मूर्धा द्युलोकस्य
शिरः। यथा शिरः शरीरस्योपरि
वर्तते तथायमग्निरहनि स्वते
जसा आदित्ये प्रविष्टत्वादादित्य
रूपेण द्युलोकोपरि वर्तते, तथा
ककुत् ककुदितिमहन्नामसु प

ह्यते अयमेव महतामाजगतः
कारणमित्यर्थः। अयमेव पृथि
व्याः पतिः। तापपाकप्रकाशनादि
भिरयमग्निः सर्वाः प्रजा अनुगृ
ह्णात्ययमभिप्रायः। इत्येवमुव्वटा
चार्यमहीधराचार्यौ व्याख्यात
वन्तौ, अस्यावेऽयंविभ्रान्तो य
द्धेलोहोमस्यश्रौतत्वमभिदधा
ति, अत्र रेतः पदेन भूलोकस्थत
तांजलानां सारभूतं व्रीहियवा
दिरूपेण परिणतं गृहीतं कप्रा
प्तं रेतोहोमत्वं अग्नौ प्रक्षिप्ता आ
हुरादित्यमुपतिष्ठते आदित्या
त्पुनर्वृष्टिद्वारा व्रीहियवादिरूपे
ण प्रजननसमर्थरेतः पदेनाभिधी
यते, वाग्मिनांपुनर्यत्र यत्र रेतः
पदं तत्र सर्वत्र पुरुषवीर्यप्रती

तिजो यते यत्र यत्र च मधुपदं
तत्र सर्वत्र मद्य मेव प्रतीयते, य
त्र च पुरुषवद्धादि पदं तत्र सर्वत्र
नरवलिः प्रतीयते, अहो एषा
मनादि पाप वासना प्राबल्यम्
पृ०२६ पं०१६। महापातकसंस
र्गि परिग्रहयो स्पत्वादिति हेतुं
विवेचयति अत्रास्मद्रीत्या प्राय
श्चित्ति भिन्नत्वे सतीति विशेषणं दे
यमतो न वैदिक स्मार्त्त कर्म्म वोध
क शास्त्रे व्यभिचारः। यत्त्वनेनकि
न्तावन्महापातकित्वं यदि सुरा
पत्वा द्यन्यतमत्वम्, तत्रापि किं
सुरात्वं यदि मदशक्ति विशिष्टत्व
मिति चेन्न सुरातुम लमन्नानांपा
प्मा च मलमुच्यते मनुना सुराशब्द
स्य पिष्टादिनिर्मित गौडीमध्वी पै

स्वस्वतमहत्त्वनिर्धारणात् इत्यु
क्तः तत्र महत्त्वविशिष्टस्य
सुरात्वनिषेधे मनुकृतनिर्वचन
स्याहेतुत्वात् नहि मनुकृतनिर्व
चने महत्त्वविशिष्टत्वाभावः
क्वचिदति येनातिव्याप्तिः स्यात्,
नापि तेनासुराव्यवहारेणैवाति
व्याप्तिः स्यात्, नापि सम्भवत्वस
म्भवः किं चैतत्पूर्वमेवोक्तमत्रा
प्यनिर्वाच्यत्वसिद्धौ किं सुरापः
पेयत्वं सेत्स्यति नहि सुरानिर्व
चनं सरतेत्यत् धीमव अन्यथो
पहासः स्यात्, किन्तु मनुर्यथैव या
विनो मानव वचनस्मृतिर्न तेने
सुसिद्धिस्ते, इति भावः। पृ० २७पं० ६
पुलस्त्यवाक्येन मद्यानि गणय
ति, पानसं द्राक्षमाधूकं खार्जूरं

तालमै स्तवं न धूत्यं सैरं मारिके
मैरेयं नारिकेरं जं समानानि वि
जानीयान्मद्यान्येकादशैव तु ॥ ६
एकादशविध वृक्षफलादिरस
विशेषेशक्तेस्त्यानस्य ब्राह्मणा
तिरिक्ते न निषेधः इति ॐ अमद्या
लवाभिन्नस्य मद्यपान निषेधा
भावप्रसाधनात्किं ने प्रयोजनम् ॥ ब्रा
ह्मणस्यैव प्राश्ने निषेधः, स्त्या
नाख्य त्रलत्वविनाशस्यैवाभिहि
तत्वात् ॥ किंच मद्यसंख्यापक वा
क्यान्येवोद्धृतानि न तु मद्यनिषे
धकानि पूर्वोपरीभूतानीति येषु
मद्यसामान्यस्यैव निषेधः । किंच
मधूक्तं माधूक मैक्षवं सैरं तालं खा
र्जूरं पानसं मधूत्यास्यैव माध्वीक
मैरेयं नारिकेरजं अमेध्यानि द

द्वे तानि मद्यानि ब्राह्मणस्य तु,
इति बृहद्विष्णुवाक्यं याज्ञवल्क्य
वचनवाक्यं च तत्र किं मांसाति
रिक्तं ब्राह्मणेन न देयम् मांसवस्तु
देयमित्युक्तं तर्हि कथं न तद्वि
धानवाक्यं वा लब्धपुरुषतमः, नहि
न्यूनातिरिक्तसंख्या मात्रा देवपे
यः पेयत्वं सेत्स्यति, यथैकादशा
विधेपि यत्किंचिद्देलासवका
दि सुगन्धिद्रव्यान्तर योगात्प्र
त्येकस्य हि विशेषहा विंशति
भेदकनामान्तरं कश्चित्कल्प्य
त तर्हि किमेकादशातिरिक्ता
निमद्यानि पेयानि स्युः। किंचा
यदुक्तमांसवस्तु भूलिखितवस्तु
निषूतोषधिविशेषे (सिकि
लिभाषाप्रसिद्धे) रूढम्तु ह

स्यास्यदेव, प्राकृतभावाभावा
वाहस्यातं सिक्षेसवयोर्मेदवि
लोपयन्त्रीयंधोर्थ्यमनि॥
पृ० २५ पं० १७। यद्यपि सः पिशाचा
नं मद्यमांसं सुराहवमिति वा
क्ये मेदेनोपात्तः। अमेनचनि
न्दामात्रंगम्यते यानेमदादि, नाऽ
धिकलमवादेऽसाऽतलकार्य
संभवात् निषेधस्तु न विधाना
त् निन्दामात्रस्य रागप्राप्तावस्था
दिकीर्त्यस्य निषेधकत्वाभा
वादितिचेत्‌ अत्रहि मद्यासवयो
र्मेदेनोपादानं किमासवस्याम
द्यत्वप्रयोजकमाहो स्वित्तेद्य
त्वप्रयोजकम्‌ नाद्यः सामा
न्यविशेषयोर्मेदेनकृत्रचि
त्साहचर्यग्रहणे विशेषधर्मा

स्य सामान्यधर्मप्रतिक्षेपक
त्वात् यत्रैकस्मिन् धर्मिणि विरु
द्धधर्मद्वयसमावेशः तत्रैकस्य
धर्मस्यान्यधर्मप्रतिक्षेपकत्वं दृ
ष्टम्, नहि सामान्यविशेषधर्म
योः कश्चिद्विरोधो येन विशेषध
र्मः सामान्यधर्मं प्रतिक्षिपेत्
न द्वितीयः। भेदेनोपादानस्य वैय
र्थ्याप्रयोजकत्वात्, अन्यथा
तुरगा अपि समद्राक्षिन्नत्वेनोपाद
ने तस्या अपि वैयर्थ्यत्वं स्यात् त
स्याच्च न तुरंगपि वेदिति वेदवच
नं व्याकुर्वीत, यच्चोक्तं निन्दामा
त्रं गम्यते निषेधस्तु न तद्विधाना
लाभादिति, तत्त्वस्य मीमांसाशा
स्त्रसंस्कारशून्यत्वं व्यनक्ति नि
न्दया तु निषेध एव द्योत्यते ऽ

र्थवादत्वात्, अन्यथा निन्दावा
क्यानामानर्थक्यं स्यात्, अतए
व (आम्नायस्य क्रियार्थत्वाद
नर्थक्यमतदर्थानां) इतिजैमि
निनाऽर्थवादवाक्यानामान
र्थक्यमाशङ्क्यसिद्धान्तितम्
(विधिनात्वेकवाक्यत्वात्स्तुत्य
र्थत्वेन विधीनां स्युः) इति सौरो
दीत यद्रोदीत्तद्रुद्रस्य रुद्रत्वमि
त्यादीनामर्थवादवाक्यानामा
नर्थक्यं माभूदिति स्तावकत्वेन
सार्थक्यमुक्तम्, किंच निषेध
स्तु न तद्विधानालाभादित्यत्र
किं विहितस्यैव निषेधोऽभिप्रे
तो रागप्राप्तस्य किं नास्ति निषेध
इति, अहो कीदृशोऽस्य संस्का
रो येन निन्दामात्रस्यराक्षसीद

त्वादि कीर्त्तनस्य निषेधकत्वा
भावं स्वीकरोति। अत्र वस्तुतः
कुत्रचिन्मुख्ये निषेधे नैव गौ
णनिषेधोऽभिप्रेतः कुत्रचिच्च
गौणमुख्यसाधारण्येनैवेति,
अयं च न्यूनाधिक संख्या मात्र
दर्शनेन पेयापेयव्यवस्थां चिकी
र्षति यत्र न्यूनसंख्यां पश्यति त
त्रावश्यपेयत्वमब्रवीति। पृ०
२८ पं० १७। तुशब्देनावधारणार्थे
नेति। अत्र दशैतानि मद्यानि
ब्राह्मणस्तु, इति ब्राह्मणपदोत्तर
तुशब्दस्य भिन्नक्रमस्तु दशैवेति
वदताऽनेनैव दर्शितः। अस्माभि
स्त्वन्यत्रैकादशविधमद्यप्रदर्श
नाच्चदनुसारेणाप्यर्थकत्वं
स्वीकृतम्। तथा च दशापि ब्राह्म

णस्येत्यर्थः अपिनान्वयिकामे कादक्षांगरहीतमितिभावः। पृ०२८ पं०१८ ब्राह्मणादेरप्याशिष्टस्य निषेधाभावेन रागप्राप्तत्वेमित्ताम् सत्यं दशविधमद्यपाने ब्राह्मणस्य निषेध इतिग्रन्थस्यासङ्गतेर्वक्तुमशक्यत्वात्तु शब्दोऽजात्यन्तरनिषेधपर इति वेति संप्रदाय इति॥ अस्माकमितुतुशब्दोऽप्यर्थेभिहितस्तेन चैकादशविधमद्यस्यान्यस्य तिविरोधपरीहारार्थं समुच्चिततत्तात्पर्यैसि कतात्कृपापितन् किंचतुशब्दोजात्यन्तरनिषेधपरइतिकोकृते मद्यपानेतु ब्राह्मणस्यैवनिषेधो देवतार्थं दानेपितस्यैवनिषेधस्तत्र ग्रन्थो छेदोक्तः। नैत

रस्य सत्रियादेः कुत्रचित्प्रय
योगेषु सत्रियवैयर्थ्योऽपि प्र
तिनिधिविधानानिषेधोऽभि
प्रेतः। पृ० २५ पं० ११। आस्वस्य
रागप्राप्तेऽपि निन्दार्थवाद
त्वेन निषिद्धत्वेन ह्यन्येन नक
थमपि निषेधविधानमिति,
ॐ अंगुलमिति निन्दार्थवादस
निषेधं सम्भवे निन्दार्थवा
दस्य निषेधकत्वे तस्यैव य
थार्थप्रसक्तेरस्माभिर्मीमांसासु
रैरभिहितत्वात्, पृ० २५ पं०
१४। अतिसुप्राकृष्टमिति किल
प्रसिद्धः ओषधिवायस्य सम्पा
दितज्ञत्वविशेषे (अंकेलिम
घप्राप्तिके पारावद्यमिति वह
ते) इत्युक्तत्वं च यज्ञापि

षा प्रतिषिद्धं नैव तद्दोषाय भ
वतिनाम्युदयायेति भाष्योक्ते
ः। त्यागपान द्वारा पुण्य पापा
दि र्जनक त्वमिति तिद्ध अत्रारिष्टा
दिमद्य विशेषे यस्य जल भ्रान्ति
रेव ब्रह्मयस्य संस्कार प्राबल्य
म्, किं भोः मूत्रे जल विशेषत्व
मस्ति कि येनसेव्यति, किं
चारिष्ट शब्दः (अर्के इतिभाषा प्र
सिद्धे शराब इतिव्यवहृते शब्दे
अत्रापामर प्रसिद्धः शराबार्क
योर्भेदः। अतोभाषायामपि न
धूर्ततामपरित्यजसि, यत आ
बालयवन प्रसिद्धं शराबार्क
योर्भेदं विलोपयसि, किंचारि
ष्टाप्रतिषिद्ध मित्यत्रन मद्ये
न किं वोत्पत्ते, अरिष्टाप्रति

बिम्बं न देशाय किन्तु शिरःप्रतिबिम्बं देशाय भवतीत्यर्थः स्यात् तथा चोपहसनीय एव, अतोऽत्र शिरःप्रतिबिम्बमिति भाष्यपाठः प्रतिभाति अथवा शिरःप्रतिबिम्बमिति वा नतु भयत्रन्न घटितः साधुरथवाऽऽद्र घटितोऽपरत्र वाच्यः। अथास्तु किमेतेन भाष्येऽप्रतेसिद्धम नयनेन भाष्येण शशाङ्केयो रैवेदः सिद्धान्ति॰ पृ॰ २५ पं॰ १८। तान्त्रिकमन्त्रसंस्कृतस्य तुमहापुण्यजनकत्वमित्यत्र किमपि कारणा च्यमिति ॐ अत्र किं प्रमाणं मन्त्रसंस्कृतं पेयमिति न हि कुत्रचित्स्मृतिष्वेतदुपलभ्यते मन्त्रसंस्कृतस्येयमिति

संस्कारोति यस्तु कर्त्ता वै न वि
हितस्तमेव संस्कारी स्यति, अस्य
पांवे हिकमन्त्रैः सामादिकैः सं
स्कृतायवना मेध्याय कथं न पा
ऽ: को वास्तु: । तस्मान्नयस्य सं
स्कृतेरेवासंभवात्, किं च बा
लग कर्त्तृकं देवतोद्देश्यकं मद्य
दानं मद्यपानमपि स्मृतिषु तन्त्रे
षु च निषिद्धम्, तथा चोक्तं
मार्कण्डेयपुराणे सुरथं प्रति वा
क्यम्, बलिमांसादिभिर्ये चैव वि
प्रवर्ज्यो मद्येन तेषां किं तु
रामांसैर्वै न पूजा न च कश्चि
त्, कालिकापुराणे च, ब्राह्म
णः सुरां दत्वा ब्राह्मण्यादेव
हीयते, तथा च श्रीक्रमे,,
नन्दकाद्ब्राह्मणोऽयं महादे

ऐकथंचन वामकामो ब्राह्मणोपि मद्यं मांसं न भक्षयेत्, अग्रे प्रति निधिकरणं बहुभिर्वचनैः कृतम् किं च मद्धि मन्त्रस्थानान्तर मेवोक्तम तु सारे एतद्द्वयं शूद्रस्यैवेति, वामकामो ब्राह्मणोपि, अस्यार्थः। चाण्डालस्त्रीलोभ द्वामं कामयमानोपि मद्यादिना दिवेत् अपिनाच प्रथमतो ब्राह्मणस्य वामो नास्ति, अस्तु तथापि मद्यं मांसं न भक्षयेदिति, कथं पुनस्त्वं मुधैव विभ्रान्तो येन मन्त्र संस्कृतस्य मद्यस्य पेयत्वं ब्रवीषि, अन्यत्राप्युक्तम्, विप्राःक्षोणी भुजस्तदितरे क्षीराज्यमध्वासवैरिति अत्र वर्ण चतुष्टयेप्र

लो कं यो ज्यम् ॥ विप्राः क्षीरेणास्य
त्रिधा आ ज्येन वैश्या मधुना शूद्रा
आसवेन अथ वनीलतश्च सप्तम
पटले, यत्रासवमवश्यन्तु ब्राह्म
णस्य विशेषतः। तत्र गुडार्द्रकन्द
घातकं वा गुडमिश्रितम् ॥ अतो
नत्राह्मणस्य कुत्रचित्सुरासवा
रिष्टादि मद्य विशेषाणां देवता
येदानमुक्तम् ॥ तन्नुसारे पित्रा
ह्मणकर्त्तृकं न देवतोद्देश्यकं सुरा
सवादिदानं निषिद्धम् ॥ ॥ अपि
पुराणेतिहास धर्म्मशास्त्र तन्त्र
ग्रन्थेष्वपि सुरासवादि दान मपि
देवताये ब्राह्मणकर्त्तृकं निषि
द्धन्तत्त्वया कुतस्त्वत्कृतितं ब्राह्म
स्वविनाशकं सुरादानम् ॥ ॥ कु
लार्णवे श्यामारहस्ये च केन चि

ह्णैन प्रक्षिप्तं ब्राह्मणकर्तृकंसु
रादानवाक्यं सर्वोस्तिकतन्त्रवि
रुद्धत्वात् , ये तु प्राक्संस्कारमू
न्या विधिना ब्राह्मणो मद्यं पिबेन्न
न्न दोष इति वदन्ति तैः स्वीयमौ
र्ख्यं व्यक्तीकृतं पूर्वोक्तैः पुराणे
तिहासतन्त्रवचनैर्ब्राह्मणक
र्तृकविधेरेवाभावात् ।। पृ० ३०
पं० ८ । यामीयपानातिरिक्तत्व
निवेशस्यावश्यकत्वादिति ❀
अत्रापि यामीयपदस्य वैदि
ककर्मपरत्वान्नतद्देश्यं वाम
कौलादिकर्मणः श्रौतस्मार्तत्वा
भावादिति नेदं तन्त्रादेव । यस्मा
धितत्वात् तन्त्रवैदिकी पौराणि
की स्मार्ती तान्त्रिकीति चतुर्वि
धोपासनाविभजनात् , अत्रस्म

श्रीपदच्छाण्डिल्यभक्तिसूत्री
योपासनाग्राह्याताम्त्रिकीपद
च्चनारदपञ्चरात्राद्यार्षतन्त्रप्र
तिपाद्याग्राह्या ततश्चानस्यतिप
दव्यपदेश्यानिवामकौलादित
न्त्राणि तद्विहितञ्चनानुष्ठेयम
द्यादीति तस्मात्यजेदृशीपापवा
सनांभजशिष्टाचारंचरश्रौतस्मा
र्तधर्म्मानिधाः वाममार्गेपदं
माश्रयस्वकुम्भीपाकापदकंवा
मंधिक्जनमहिंतंस्मृत्वाचण्डा
लादीषसिअर्थं प्रणीतमिति
पृ०३०पं०१६। नित्यमुक्तत्वेनम
ण्वन्तपिनभणोतीतिमुमुक्त
जीवन्मुक्ताद्दशावस्थाविशे
षस्थत्वेनस्तुतिनिन्दाभयादि
नाऽप्रवर्तमानानांगृहस्थि

नास्मित्यादिके सम्प्रतिजीवन्मु
क्तानां स्थितप्रज्ञानामाचारे का
मचारमपकुरुते तेषां मध्ये स्वा
चरणत्वात् पूर्वं योगिजनकर्म
णितु नापकृतः ॥ अत्रहि जीव
न्मुक्ते अविद्यस्तु प्रतिषेधशास्त्रं
निवृत्तं चेत्तर्हि विधिशास्त्रमपि
निवृत्तमेव विधिनिषेधमयशा
स्त्राणां विद्यावद्विषयाण्येव-
स्त्रीकृतानि देहेन्द्रियादिष्वहं ममाभि
मानरहितस्य प्रमातृत्वानुपप
त्तौ प्रमाणप्रवृत्त्यनुपपत्तेः। नहि
इन्द्रियाण्युपादाय प्रत्यक्षादि व्य
वहारः संभवति, नचाधिष्ठानम
न्तरेणेन्द्रियाणां व्यवहारः संभव
ति, नचानध्यस्तात्मभावेन देहेन
केचिद्व्याप्रियते, नचैतस्मिन्सर्वे

स्मिन्नसति अस्तङ्ग्या मनः प्रमा
तृत्वमुपपद्यते, न च प्रमातृत्व
मन्तरेण प्रमाणप्रवृत्तिरस्ति तस्मा
दविद्यावद्विषयाण्येव प्रत्यक्षा
दीनि विधिनिषेधमवशास्त्राणि
चेत्युत्तरमीमांसाशास्त्रे सविस्तर
मुपपादितं शाङ्करभगवत्पादैः । अ
तो मन्त्रसामर्थ्यप्रभावेणाचापेक्षा
भावेन नित्यमुक्तत्वेनेति वदतो धा
वतश्च ते नाऽऽत्रादिविभ्रान्तिलाभ
इति,, पृ० ३१ पं० ५। अदैवो द्देश्यक
विधिवाक्यघटितत्वं चोपाधिरत्रे
ति आपत्या सिद्धिस्त्र प्रायश्चि
त्तिभिन्नमहापातकसंसर्गि प
रिग्रहयोग्यत्वहेतुकानुमाने इ
ति बोध्यमिति चेत् अत्र पृष्टव्योऽ
यमनुमानकुशलः कथमयमु

पाधिः साध्या व्यापकत्वात्प्रमा
णत्वाभावस्य शाक्यबुद्धादितन्त्रे
षु तत्रादेवोद्देश्यकविधिघटि
तत्वं नास्ति तत्रापि देवोद्देश्य
त्वन्त्वस्त्येव ब्राह्मणकर्त्तृकत्वं
नास्तीति त्वन्यद् येचस्मृद्वा द
योनास्तिकास्य पतिता ब्राह्मण
बुवाश्चाधिकारिणस्तेऽपि यां
कांचिद्देवतामुद्दिश्यैव तत्कर्म
कुर्वन्तीति, व्याप्यत्वासिद्धिश्च
व्याप्ये व्याप्यतावच्छेदकस्या
भावः। अत्र च मद्यपानकर्त्तृत्व
व्याप्यतावच्छेदकस्य महापात
कित्वस्य स्यापितत्वान्न तदभा
वः साधयितुं शक्यः। मन्त्रसंस्कृ
तस्यापि तस्य मद्यस्य ब्राह्मणे
नापेयत्वस्य साधितत्वादिति

नव्याचेत्या सिद्धि दोषः पदमा
दधाति, पृ० ३१ पं० ७। श्रीत्वा परि
गृहीतत्वादिति स्वरूपासिद्धो
हेतुरिति, अत्र कथं स्वरूपा
सिद्धत्वं नहि कुण्डलीयोगस्य
ट्चक्रभेदनस्य वामे प्रवृत्तस्य
ततस्यैकदेशमात्रस्य शाक्तादि
शिष्टजनगृहीतत्वेन स्वरूपा
सिद्धत्वं तावन्मात्रस्य शाक्य
बुद्धादिशास्त्रसाधारण्यात्,
पृ० ३१ पं० १५ आस्तिवेच्छकेश
दिभिस्तद्ग्रहस्योपपादितत्वा
स्वरूपासिद्धो हेतुरिति, शि
ष्टत्वं वैदिकत्वमात्रं न वेतिच
अत्र विधि कोटिरेवास्तिक
मात्रसंमता तत्र योदोषः शाक्तं
रादिपरिग्रहरूपः स चाप्यनहि

त पूर्वमेव समाहितो येन स्वरूपा
सिद्ध्यभावः स्यादिति, पृ० ३२ पं० १
अथ शिष्टेतरग्राहकत्वं नास्त्येवेति
चेत्पुराणाद्यन्तर्भावेनाव्यभिचार
इति केचिदाहुरिति, अहो पदे
पदेऽसङ्गतम्ब्रवीति धैर्यशालिकं
कर्मिकथं शिष्टेतरग्राहकत्वं ना
तं गच्छन्तः शिष्टेतराभावेऽयुक्तत्
कर्मणोऽपि स्मार्त्तत्वात्, किंच
शिष्टेतरत्वञ्च शिष्टनिष्ठप्रतियो
गिताकभेदवत्त्वं चेद् घटशिष्टो
भयं नेत्यस्य घटविशिष्टशिष्टोने
त्वस्य चोभयभेदस्य विशिष्टभेद
स्य च शिष्टनिष्ठप्रतियोगिता
कत्वाच्चाऽसम्भवाच्छिष्टेऽपि सत्त्वात्
तथा ह्यस्यापि शिष्टेतरग्राहकत्वं
स्यात्, यद्यपि भेदीयप्रतियो

गितायां विशिष्टव्यासज्यवृत्ति
धर्म्मावच्छिन्नत्वनिवेशात्तद्वा
रणन्तथाप्यो नरे यशिष्टेदाक्षि
णात्मशिष्टोनेति भेदसत्त्वात्तद्ग्रा
ह्यस्यापि शिष्टेतरग्राह्यत्वम्, शि
ष्टत्वत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताक
पर्याप्त्यनुयोगितावच्छेदकस्य
वृत्तियोगिताकभेदवत्त्वविवक्ष
णेच दोषाभावः। शिष्टत्वेतरध
र्म्मानवच्छिन्नप्रतियोगिता
कभेदवत्त्वविवक्षणे चोभयभे
दविशिष्टभेदस्याप्रदायदोषस्तुन
भवति तथापि नवस्यादोषस्या
त्शिष्टत्वेपि घटशिष्टत्वोभयं
नेति भेदस्य सत्त्वात्, शिष्टत्वे
तरधर्म्मानवच्छिन्नप्रतियोगि
ताकभेदविवक्षणे च शिष्टत्वे

नि यद्दक्षिणत्वं तेनेति भेदसत्वा
त्। तद्वारणाय दक्षिणत्वत्वव्येतर
धर्मानवच्छिन्न प्रतियोगिता
क भेदविवक्षणे च। दक्षिणत्वस्वते
षु भयभेदः। एवमग्रेपि त्यनव
स्थेति पण्डितरूपवेली या। पृ०
३२ पं० २७ एकं दक्षिणं वा मन्यानपे
दितिः। अत्र दक्षिणत्वं च वामापे
क्षया लोकेऽयं भेदो वाममार्गो यत्र
न्येषैव नत्वस्मद्दिक सम्प्रदा
ये वामदक्षिणभेदः अस्मन्मते तु
श्रौतस्मार्तभेदेन कर्मणो द्वैवि
ध्यं नुक्रमः। तथा च वामत्वदक्षि
णत्वविचारस्तु निर्मूल एव किन्त
न दक्षिणत्वमिति। पृ० ३२ पं० ३१
तन्त्र लाक्षणे देने लिङ्ग अहो कर्णी
सर्वे कतिचारलनादितनमभिधा

नमस्य, नह्यत्रतन्त्रत्वावच्छेदेना
प्रामाण्यसाधनंनवादक्षिणतन्त्र
त्वावच्छेदेन प्रामाण्यसाधनं कि
न्तु वामबुद्ध तन्त्रत्वावच्छेदेनाप्रा
माण्य साधनं कथमुनस्तन्त्रत्वा
वच्छेदेनानुमितौ भागासिद्धत्वे
नसामानाधिकरण्येनानुमितौ ना
सिद्धिरिति ब्रवीति, किंच तन्त्रं च
दि न प्रमाणं शिष्टापरिगृहीतत्वा
दिति स्वयमेवासङ्गतं प्रतिज्ञाय
न तद्दूषणेन वामे प्रामाण्यं से
त्स्यति नापि कुत्रचित्पुराणेतिहा
स धर्मशास्त्रेषु वाममार्गीय क
र्मकारिणअमुकंफलंलभन्त
इत्युक्तम्, तस्माद्वामतन्त्रत्वाव
च्छेदेनैव पक्षत्वमनुमितिरपिप
क्षतावच्छेदकावच्छेदेनैवेति,

पृ० ३२ पं० ७। वामत्वलक्षण प्रस्ता
वे त्तीय हेतूक्त वामत्व विशिष्ट
दक्षिणादि भिन्नत्व पक्षत्वे आ
श्रयासिद्धो हेतुरिति कि अत्र द्र
ष्टव्योऽयमत्वलक्षण प्रस्तावो
वामस्य, पूर्वमनेन वामं शोभन
द्रष्टव्योरिति कोषगतशोभनमा
पत्वार्थोऽभिप्रेतः। अस्माभिस्तु
द्वितीयनामादाय हुतमार्गीय
त्वार्थोऽभिप्रेतः। तत्रापि वाम
त्व विशिष्टवामस्यैव पक्षत्वं न
तु वामं विशिष्ट दक्षिणभिन्न
स्य पक्षत्वं प्रयोजनाभावात्
क्व पुनराश्रयासिद्धिरिति, अ
स्य मुखविवरात्किं चिन्निर्ग
ति न पुनरयमालोचयति किं
मे मुखविवरान्निर्गलित मिति

तेन केनोपमेयमस्य मुखमिति न विजानीमः। पृ० ३२ पं० २४। वस्तुतो वामत्व दक्षिणत्वभेदाभावेन तन्निवेशे तन्त्रेषु पक्षतावच्छेदकासिद्धिरेवेति हन्त भोः। यदि दक्षिणभिन्नत्वविशिष्टवामत्वस्य पक्षतावच्छेदकत्वं स्यात्तर्हि भेदेऽपि पक्षतावच्छेदकासिद्धिस्तदेव तु न केनाप्यभिमतं कथं पुनः पक्षतावच्छेदकासिद्धिमप्रसन्नामुद्भावयसि। आस्तिकमात्रसंमतं कर्मश्रौतस्मार्तञ्च अधोर्ध्वाम्नाय दक्षिणाम्नायादयः पञ्चाम्नाया वामप्रतिपादकत्वं नाम्यत्रेत्यप्रस्तुत विचार एवेति। वस्तुतो वामत्वं प्रतिकूलत्वं दक्षिणत्वञ्चानुकूल

त्वम्, अयं पुरुषो मेवा मो यं चद
सिणाइति सार्वजनीन व्यवहा
रात्, कथमत्यन्तविरुद्धयोर
भेदं ब्रूते वस्तुतो वामत्वदक्षिण
त्वयोर्भेदाभावेनेति, तथा चैत
दादयाग्रिमं शाङ्कासमाधा
नमप्युच्छिन्नमूलमेवेति॥
पृ० ३३ पं० १६। वस्तुतस्संन्यासस्य
न कलावत्यन्तनिषेध आ
तुराद्यवस्थायामारूढपतित
त्वादिसंभावनाऽभावेन तादृ
शावस्थाविशेषार्थत्वेन चरि
तार्थत्वादिति॥ अत्रागतोऽ
स्मत्पितृचरणानां प्रभातरू
तिन्यायमनुसरन् यथाहि क
लिकालावच्छेदेनारूढपति
तत्वभीत्या स्मृतिः संन्यासंनि

षेधयति कल्पतिरि त्त कालाव च्छेदेनैवातू व्यतितत्वाभावनि श्चयेच कलिकालाव-च्छेदेना पि विधत्ते श्रुतिःस्मृतिश्चेति तथैवास्याल्पभगवाल स्यादिव्यपीयमेवरीतिरद ईश्चानंगवालस्यादेरपत्र निषेधः किंतु कर्भवैगुण्य भीत्या पश्वादिवधजन्यपा पभीत्या चैतिनात्यन्तनिषे धः। यत्रचानिषेधकारणं ना स्तितत्र न निषेध इति भावः पृ० ३४ पं० ६ तात्पर्यमिति सभानाधिकरणवेदमिन्न त्वं च भवदभिमतहेतोः प क्षेऽप्युपगमे उपाधिःस्मृति त्वस्यपुरा तन्त्रपुराणादावु

पपादितत्वेन शाक्यादिमन्त्रे
साध्यव्यापकत्वात् पक्ष एवसा
धनाव्यापकत्वस्य भवतैवोप
पादितत्वाच्चेति । अत्र स्मृति
भिन्नत्व वेदभिन्नत्वयोः सामाना
धिकरण्यं किं सामनैयत्यरूपम्
आहोस्वित् , एकाधिकाधिक
रणवृत्तित्वरूपम् , नाद्यः पक्षः
स्मृतिभिन्नत्वस्यवेदेसत्वात्तत्र
वेदभिन्नत्वाभावात् भेदस्यप्र
तियोगितावच्छेदकेनसहविरो
धात् , यथा घटभेदप्रतियोगि
तावच्छेदकं घटत्वं घटे वर्त्तते त
त्र घटभेदाभावः स्वस्मिन्स्वभेदान
ङ्गीकारात् , तथास्मृतिभिन्नत्वं
च वेदे तत्र वेदभिन्नत्वाभाव इति
भावः । न द्वितीयः । शिक्षापरिग्

हीतत्वरूपहेतौ बाधितत्वावच्छे
देन व्यापकत्वात् बाधे चानुभ
वत्वस्य व्यापितत्वात् तत्रस्मृ
तिभिन्नत्वाधिकरणवृत्ति वेद
भिन्नत्वस्य सत्वात्, सामान्य
तः स्मरणंस्मृतिरित्यभ्युपगमे
तु शाक्यबुद्धस्मृतित्वावच्छेदेन
स्मृतिभिन्नत्व समानाधिकर
णवेदभिन्नत्वाभावात्प्रमाण
त्वाभावरूपसाध्यव्यापकत्वा
च्च किंच स्वकल्पितानुमानदूषणे
नहि बाधे प्रामाण्यमभ्यनुज्ञातं
स्यात्, पृ०३४पं९। एवं पक्षता
वच्छेदकं दक्षिणातिरिक्तत्वंच
सन्दिग्धोपाधिरिति, अत्रहि
पक्षतावच्छेदकस्योपाधित्वे
यत्र साध्यं तत्र पक्षतावच्छेदकं

यत्र साधनं दृश्यते तत्र न पक्षतावच्छेदकमित्यनुमानमात्रोच्छेदापत्तेः। किंच दक्षिणातिरिक्तत्वं शाक्यादिग्रन्थे शिष्टापरिगृहीतत्वस्य साधनस्य व्यापकमिति नोपाधिः। अत्रोपाधिमुद्भावयन् के नोपमेय इति न विजानीमः। पृ० ३६ पं० १२। शिष्टपरिगृहीतमयोग्यत्वादित्यत्र मोहेतुरत्र किं सिद्धमयोग्यत्वं शिष्टपरिगृहीतावच्छेदकधर्मशून्यत्वं चेदुक्तरीत्या स्वरूपासिद्धिरिति। अहो अयोग्यत्वस्य निर्वचने कीदृशो ऽयं विभ्रान्तः। किं भोः। अयोग्यत्वस्य शिष्टपरिगृहीततावच्छेदकधर्मशून्यत्वे शिष्टपरिगृही

तु मि ति तु मनन्तस्यवै यर्थ्यम
तथा च योग्यत्वं योनि स्वालित
जलतर्पणाद्यभाववत्त्वन्तदभा
वश्चायोग्यत्वं तच्च योनिक्षा
लितजलतर्पणवत्त्व योनिले
हनवत्त्वाद्यन्यतमत्वम् २ पृ०
३६ पं० १६। नहि तान्त्रिकमतम
नुतिष्ठतांकापि पापं स्यादिति
अहो अस्य कीदृशः संस्कारः
यदा हि ज्योतिष्टोमादिवैदिक
कर्मानुतिष्ठतामपि पशुबी
जादिवधजन्यपापभाक्त्वस
द्भावः स्वीकृतः। अत एव पापफ
लं वृत्राद्यसुरकृतंभयादिकन्दे
वानां स्वर्गिणामपि सर्व्यते?
किमुत वामाचानुतिष्ठतां का
पि पापं न स्यादित्यभिमन्यते

पृ० ३८ पं० ९। चरमत्वं वत्ताद्दशान्‌ तद्
द्दशाभक्तेरेव जन्मजन्मान्तरे मि-
लच्च त्वेन स्वावच्छिन्न भक्तिवि-
षयेतरविषयकभक्ति प्राग
भावानवच्छेदकत्वस्य सर्वज-
न्मसु सत्त्वेनोपपाद्यमिति।
अत्रायुक्तः। यं चरमत्व परिष्का-
रः। चरमत्वं च जन्म निष्ठस
जातीयशरीर प्रागभावान
धिकरणत्वमेव सर्वसंमतम्‌
पूर्वम् तसंजन्मानारं - तद्वच्छि-
न्नाया भक्तिः - तद्विषयो देव
ता - तदितर विषयो यस्याभ
क्तेः - तत्प्रागभावानवच्छेद
कत्वं पदुतरं भक्तिर्नोत्पद्यते
तस्मि - न्शरीरे यथा तथैवा
वच्छेदकत्वाभावस्य घटपटादि

सुसर्वत्र विषेधस्य ऽपमि
ति, पृ० ३५ पं० ४। तुरा रिसा तिरि
क्तमद्य योरेव ब्राह्मणानां सु
रायाश्च त्रैवर्णिकानां वेदस्मृत्या
दिविहितयाग: तिरिक्तकाला
वच्छेदेन पापबोधनात्, एवम
भक्ष्यत्वविधिः स्य मांसादेरदने
पि ह्येयमिति। अस्माभिस्तु
वाममतन्त्रेस्य तित्वं पूर्वमेवनिर
स्तन्तत्रानुभवत्वस्थापनात्
किंच यस्य पशुहिंसादेः पाप
जनकत्वं तस्य यागकालाव
च्छेदेनापि पापजनकत्वम्
अतएव यागोत्तरं प्रायश्चित्त
विधानम्, अन्यथा तदनर्थ
कं स्यात्, पृ० ४० पं० १६। नचत
त्रादैक्ष्कचिन्मात्तगमनंविहित

मितिवाच्यम यंत्रपूजातत्सं
स्कारकाले शोधनादिरूपताड
नस्यजलसिंचनादिरूपप्रका
रविशेषस्यविधानादिति॥ अ
नामान्यूहः कोविदारानाचह
हूतिन्यायमनुसरतिस्वयंमस्त
्तु गमनेमाशङ्क्यानुरूपो
त्तरकरणात्, पृ० ४१ पं० १ स्त्री
यातिरिक्तानामपण्यानांचग
मनेसर्वत्रदोषश्रवणादिति॥
कुत्रचिदत्रवामाचारः। स्त्रीया
भिन्नानामपण्यानांगमनेदो
षंस्वीकुर्वन्तिवामिनः। स्त्रीया
भिन्नानांपण्यानांचाण्डाल्या
दीनांकुलाष्टकानांमत्स्यक्री
तानांचगमनेदोषाभावोऽ
भ्युपेतः। अस्तु व्यभिचारज

न्मदोषाभावस्तासुगमनेजा
तिपातत्वं के नवाप्यैते, अ
होअगम्यागमनमपिपूजा
त्वेस्वीकुर्वन्ति वामिनस्तेनैव
धर्मोत्पत्तिरभिमन्यन्ते, प
रत्रपरकीयायाः स्वीयात्वस
म्पादनाय तान्त्रिकविवाहसं
स्कारोऽभिहितः सच व्यावर्ण
मानोमातृगमनमपि मातरि
व्यावर्त्तयतीत्युच्यते तद्दूरस्ते
वविधेयोवामैः परकीयायाः स्
वतत्वीकारात् मातुरपिपि
तृसम्बन्धित्वेन परकीयात्वा
विशेषात् पुरुषप्रधानो हि सं
स्कारः पुरुषं संस्करिष्यति
पः संस्कारोवस्यचूडकर्णवेधे
न निर्दिष्टस्स चतस्यावश्य

क इति मातापितृसंस्क्रियतां का
मिभिः परकीयात्वाविशेषादि
ति। पृ०४१ पं०२। अत एव निर्वा
णतन्त्रे विवाहसंस्कारप्रकर
णे परकीयायाः स्वीयात्वसंपा
दनायैव तान्त्रिकं विवाहान्तरं
च कृदानकालिकं तन्त्रजना
र्थं विहितम्। प्रथमस्वीयाया
मष्टमतेरानन्दपरायणस्यैव
ताध्यानमहोमाभूदिति स्पष्टं
चैद् प्राणतोषिण्यामिति ॥ अ
नवद्यमेवमनुर्विवाहसंस्कारे
वामिमांसेन चाण्डालादियोषि
तस्संस्क्रियन्ते, न त्वत्र परकीये
ति सामान्यपदोपादानं क्वचन्तनो
विशेषस्त्रीणां ग्रहणे न दोषमारो
पयन्ति भवन्त इति चेन्न चाण्डा

लीचर्मकारीचमातङ्गी पुल्क
सीतथा श्वपची खन कीचैव
कैवर्ती विश्वयोनिकेतिवच
नात्, सामाजिके स्वक्षतयोनि
वालविधवायाःसवर्णेन पुरुषे
ण पुनर्विवाहोऽभिहितः।वा
मिभिस्तु शूद्रादि चाण्डालन्त
न्तानां सधवानां ब्राह्मणेनस
ह पुनर्विवाहो भैरवीचक्रका
ले स्वीकृतः। ब्राह्मण्याः शूद्रा
दि चाण्डालान्तानां चेति सा
माजिकेभ्यो वामिनां विशे
षः। आनन्द परायणस्य—ना
स्तिकस्यानन्द सङ्केतस्य, सी
मायां—स्वपत्न्या म, अहह
मतेः—विरक्तचित्तस्य, कौ
लिकस्य परकीयया पुनर्वि

वाहः। अन्यथा परकीयायां मनसः स्थैर्ये देवताध्यानभङ्गः स्यात्, अतस्तया विवाहं विधाय तेन स्वीयात्वं तत्र सम्पाद्य तयाच सङ्गं विधाय पुनर्देवताध्यानभङ्गोन भविष्यतीति प्राणतोषिणीग्रन्थे स्पष्टम्, अतएव ग्रन्थस्यापि संज्ञाऽन्वर्था, यथा दैत्यदानवानामसुरेतिसंज्ञा असुषुप्राणेषुरमन्त इत्यसुराः तथेयमपि प्राणान् तोषयतीति प्राणतोषणी, आसुरीत्यर्थः। एवं मृदुचाण्डालानामपि स्वीयात्वदृढमतीनां ब्राह्मण्यां परकीयायां मनसः स्थैर्ये देवताध्यानभङ्ग भीत्या तामुपयम्य

स्तीयात्वं सम्पाद्य तक्च्च विधा
यन्तेषामपि मविष्यतीति॥
पृ०४१ पं०६। कुण्डगोलादिरेतो
दानं कश्चिद् यदि तस्य का गति
रिति चेत्समयाचारतन्त्रादेपु
ष्पद्वययोजनेन रक्तचन्दनस्य
तत्र विधानादिति। अत्र कु
ण्डगोलैरेतोदानसाकाङ्क्षिद्
द्वस्य गतिं विविनक्ति विवि
च्चं स्वसमयाचारतन्त्रे रेतोद
नस्थाने पुष्पद्वयसंयोजने
न रक्तचन्दनदानमुपलक्ष
णं, तच्च प्रतिनिधिविधान
त्तदैवस्याद्यदि कस्यचित्
मिनो नापुंसकत्वदोषेण रेतो
ऽभावः स्यात् तत्रैव तस्य मु
ख्यस्यैव दानं न तु तस्यानी

यस्तो चन्दनदानमिति। पृ०
४१ पं०१०। स्त्रीमात्रदर्शनेन स्त्री
जगदम्बादिध्याननमस्कृति
कुलसङ्कमध्यानस्य देवता
प्रसन्नताहेतुत्वेनावधारणात्
तदुक्तेः स्वीयापण्यस्त्रीछित
यमात्रविषयस्य योगेनब्रह्म
रन्ध्रतर्पणरूपवज्रौलीक्रि
याविशेषस्येव शक्तिपूजादि
कस्य विधानादिति। अस्तु
स्त्रीमात्रदर्शने जगदम्बाध्या
ननमस्कारार्थं पुरुषमात्रद
र्शनेऽपि शिवादिध्यान
नमस्कारार्थे कुलसङ्गमस्य
चाण्डाल्यादिव्यभिचाररू
पस्य ध्यानं देवताप्रसादहेतु
स्तत्किं मातृचाण्डाल्यादिस्त्री

मात्रदर्शनमेव च जगदम्बा
स्मारकं नान्यदित्यत्र च किंचि
न्निगमकमिति ॥ पृ० ४१ पं० २८
पूर्वोक्तरीत्या संभवेनायोग्यत्व
हेतोः स्वरूपासिद्धत्वान्नाप्रामा
ण्यसाधकत्वमिति ॥ अस्म
दुक्तरीत्या च तत्संभवेनायोग्य
त्वहेतोस्तत्र सत्त्वात् त्वत्य प्रामा
ण्यसाधकत्वम् ॥ पृ० ४२ पं० २
एवं महापातकसंसर्गिपरिग्र
हयोग्यत्वं च स्वरूपासिद्धमि
ति ॥ अस्यापि प्रायश्चित्तभि
न्नमहापातकसंसर्गिपरिग्र
हयोग्यत्वविवक्षया न प्राय
श्चित्तिमादाय व्यभिचारः। अ
सिद्धेस्तु पूर्वमेव निरस्तत्वाना
प्रामाण्यसाधकत्वे कश्चिद्दोषः

पृ०४२पं०९। तन्त्रधर्मिचातुर्वर्ण्यस्वीकृतत्वसमानाधिकरणयुगचतुष्टयवृत्तितावान् साधारणधर्मत्वात् इत्यादिवदिति॥ अत्र साध्ये साध्यतावच्छेदकाभावरूपा साध्याप्रसिद्धिः। वामतन्त्रे मुख्यब्राह्मणस्यानधिकारसाधनात्, चातुर्वर्ण्यस्वीकृतत्वाभावात्, यत्रायं तन्त्रपक्षीकरोतितत्रसर्वत्र वामतन्त्रस्यैवोपादानं, अन्यथाऽभागासिद्धिः स्यात्, किंच वामतन्त्रे धर्मेण चातुर्वर्ण्यस्वीकृतत्वसमानाधिकरणयुगचतुष्टयवृत्तितावान् धर्मत्वव्याप्रणीतत्वाभावात् वृद्धधर्मवत् किंवा धूर्तप्रणी

तत्त्वेनाभिन्नधर्मित्वात्पाक्ष
ऽधर्मत्वमित्यनेन सत्प्रतिपक्षित
त्वात्, न चाप्रयोजकत्वम्, वि
पक्षे बाधकतर्काभावात्, स
त्प्रतिपक्षितत्वं च, प्रकृतप
क्षधर्मिकप्रकृतसाध्यवि
धेयकानुमितित्वव्यापक
प्रतिबध्यतानिरूपितप्रति
बन्धकतावच्छेदकत्वे सति
विशिष्टपक्षविशिष्टसाध्य
प्रतियोगिव्यापकप्रकृतपक्ष
धर्मिकप्रकृतसाध्यविधे
यकानुमितित्वव्यापकप्र
तिबध्यतानिरूपितप्रतिब
न्धकतावच्छेदकविषयित्वा
वच्छिन्नानुमितिनिष्ठजन्य
तानिरूपितजनकतावच्छे

दिकायादृश विशिष्ट निरूपित
विषयिता तादृशविषयिताश्रा
लित्वम्, इत्येवं वह्निमान्धूमा
दित्यादौ वह्न्यभावव्याप्यव्या
प्यवद्धृदादावतिव्याप्तिवारणा
य सत्यन्तम्, वन्ह्यभाववद्धृद
दावति व्याप्ति वारणाय जन
कतावच्छेदकान्तम्, काञ्च
नमयहृदः काञ्चनमयवह्नि
मानित्यादौ काञ्चनमयत्वा
व्याप्यवद्धृदादौ काञ्चनमय
त्वाभाव व्याप्यवद्धृदादौ चा
तिव्याप्तिवारणाय विशिष्टपद
विशिष्टसाध्यग्रहत्वाव्यापक
त्वस्योपादानम्, पृ० ४२ पं० १३
वाम तान्त्रिकधर्मावेदिकध
र्मसमानाधिकरणः साधार

णधर्मित्वात् सामान्यविशेष
योः सामानाधिकरण्यनियमा
दिति॥ अत्रापि हेत्वसिद्धिर्ल
क्षणस्यवामेऽनधिकारसाध
नात्ः किंच वाम तन्त्रे धर्मप्रमा
णत्वाभावस्य साध्यत्वे न विवा
दस्य सत्त्वात्पक्षासिद्धिरपि बो
ध्या, वामतन्त्रस्यात्मास्मासिर्ध
र्मजनकत्वस्वीकारात्, मार
णोच्चाटनस्तम्भनोन्मादकत्वा
द्यङ्गभेदसम्पादनं विना धनपु
त्रादिषु भेदसम्पादकत्वाभा
वात्, किंच धर्मपदेन धर्मसा
धनक्रिया विवक्षिता तथा चो
भयोः क्रिययोः सामानाधि
करण्यस्यैवाभावात्साध्याप्र
सिद्धिरपि क्रियायाः क्षणिक

त्वाद्वैदिकक्रियाक्षणे वामता-
न्त्रिकक्रियानाशात् किं चवै-
दिकक्रियापत्रानुष्ठीयते नहि
तत्र वामतन्त्रप्रतिपाद्यास्त्वाण्य-
ल्यादय आहूयन्ते नापिभगलि-
ङ्गादेस्तत्र निष्पाद्यते नापि
भगपूजनन्तत्रानुष्ठीयते नापि
योनिक्षालिततोयतर्पणं जिह्व-
यायोनिलेहनंवाऽनुष्ठेयमिति
पृ० ६२ पं० १५। व्यापकधर्मोव्या-
प्य धर्मसमानाधिकरणः व्या-
पकत्वादित्यनुमितिरपिबो-
ध्येति। अत्रार्थेतः पुनरुक्ति-
रियं सामान्य विशेषयोरेव व्या-
प्य व्यापकत्वात्, व्याप्य व्याप-
कत्वासिद्धिश्च अनुपदोक्त-
रीत्यैवास्य खण्डनादितिभावः

पृ०४२ पं०१६। एवं वामतान्त्रिकधर्मः स्वविशिष्टः साधारणधर्मत्वादिति। अहो कीदृशोऽयमसम्बद्धप्रलापः प्रथमतो वामतन्त्रधर्मस्यासाध्यसिद्धा पक्षासिद्धिः पुनश्च स्वस्मिन् स्ववैशिष्ट्याभावात् साध्याप्रसिद्धिः। ब्राह्मणस्यानधिकारसाधनाद्धेत्वसिद्धिश्च अनेन न्यायप्रयोगेनास्यन्याय तत्त्वानभिज्ञत्वं प्रज्ञायते। अग्रिमं वैशिष्ट्यन्तु परमञ्जासम्, तथाहि स्वावच्छेदककालावच्छिन्नत्व स्वावच्छेदक स्थूलशरीरावच्छिन्नत्व सौयकालिकसंसर्गावच्छिन्नव्याप्यत्वसैतन्त्रितयसंस

सौरभत्वक्रमम्, अत्रस्वावच्छेद
केनकालेनावच्छिन्नत्वमन्य
स्मिन्वाच्यं येनप्रतियोग्यनु
योगिनोर्विशिष्टबुद्धिनिया
मकत्वरूपं सम्बन्धत्वन्तत्रघटे
त, कथंस्वस्मिन्नेवस्वसम्ब
न्धत्वम्, यथाहि स्वावच्छेद
कंकालन्तदवच्छिन्नत्वं सुखे
वर्त्तते भवतिचसुखेधर्मस
म्बन्धस्तथाचधर्मविशिष्टं
सुखमितिविशिष्टबुद्धिरपि
तत्रास्ति, स्वावच्छेदकं स्थूल
शरीरं तदवच्छिन्नत्वमपि सु
खेवर्त्तते भवति सुखे धर्मस
म्बन्धस्तथाचात्रापिधर्मविशिष्टं
सुखमितिविशिष्टबुद्धिः। अत्र
चेत्तस्मिन्स्वसम्बन्धं ब्रूव न

षिकतरमुपहसनीयो विदुषा
म्. अत्रैव मपार्थकमभिदधानः
केनोपमेय इति न विजानीमः
स्वीयकालिकसंसर्गावच्छिन्न
व्याप्यत्ववत्वसम्बन्धस्त्वतिविल
क्षः स्वीयेत्यत्रस्वानुयोगिकेत्यर्थ
स्यात्सन्न सम्भवति स्वप्रतियो
गिकेत्यर्थो वास्यात्सन्बाध्यसङ्क
त एकस्यैवप्रतियोग्यनुयोगि
त्वाभावात् । किं च कालिकसंस
र्गस्य व्याप्यत्वस्य चावच्छेदकत्वे
दकभावे व्याप्यताकस्येति वाच्यं य
दि कालिकसंसर्गस्यैव तर्हि का
लिकसंसर्गव्याप्यत्वं वाच्यं कथं
कालिकसंसर्गावच्छिन्नव्याप्य
त्ववत्वमुक्तम्. अवच्छिन्नत्वंचा
वच्छेदकतानिरूपितत्वं तर्हि क

स्यसा आप्यता संसमेस्यचे तयो
र्पोपया आपकभावउन्हरवनत्व
वचेधावछेदकाभावस्तयोरिति
रवमग्रिमक्रिकमपि स्वविशिष्ट
वैशिष्ट्य कथमेव द्वलित्व स्वसमा
नाधिकरणवैशिष्ट्येतरवर्णवृत्ति
त्व स्व साक्षा. स्यचितयेनेति ध्येय
मिति॰ सर्वमस्पृष्टम्, एतन्निर्वं
बिद्धिर्निरीक्ष्यमाण्या. स्वयमेव
ज्ञास्यन्ति, पृ० ४३ पं० ३। इतरवर्णो
स्यापि यथेमां वाचं कल्याणीमा
वदानि ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्रा
य चार्याय च स्वाय चारणाय. यजुः
२६।२। यद्वैकया सिद्धिर्या भोज
नकर्मकाराः स्वामिकदक्षिणा
दिनाग्रहणप्रदर्शनेन सत्यस्य त
दुर्मिस्यक्कचित्सहदेवपूजादि

भक्तिकालिकोपस्थितिमा
त्रं एतन्मन्त्रबलेनैव वर्णितं प्र
कारकोपदेशविषयताया प
कं वर्णत्वात् यन्मैवं तन्मैवं मि
त्यादि॥ अत्र वर्णत्वे भक्ति प्र
कारकोपदेशविषयताव्यापक
त्वसाधनाद्वा मतन्त्र प्रामाण्ये
किमायातम्, अस्तूपासनाका
ण्डस्य तन्त्रोपयोगः आर्षतन्त्रा
णां नारदपञ्चरात्रादीनां वा, श
मतन्त्रेण तु प्रायो व्यभिचार प्रका
रकोपदेश एव वर्णित इति चेत्,
किं वर्णाश्रमरहितेषु च शू
द्रेषूपदेशो नरकपातजनक
इति यतः तत्स्य जैह्म्यापार
मिति किं च मन्त्रास्तून्तदा कु
प्रकाशनेवा मतन्त्र प्रामाण्ये कि

माप्रातम्, अत्रसायणाचार्यो
मते ऽस्यमन्त्रस्यदक्षिणा प्रकर
णस्यत्वाद् यजमानोक्तिरिय
म्, अस्यार्थः। यथा, येन प्रका
रेण, इमाम्, प्रत्यक्षभूताम्, वा
चम्, सुप्रियां वाणीं, अहं, आ
वदानि, समन्ताद् वच्मि, केभ्य इत्या
काङ्क्षायाम्, ब्रह्मराजन्याभ्याम्
ब्राह्मणक्षत्रियाभ्याम्, आर्या
य, वैश्याय, शूद्राय, इत्यत्रानि
र्वचित शूद्राय, इति प्रतिभाति
अग्रेसर्वेनिरवशिष्टा ग्राह्याः। तथाच
स्वीयाय, पुत्रादिरिक्षाय च, प्रि
योदेवानां दक्षिणायै दातुरिह,
इह, अस्मिं लोके वा, देवानाम्
अजनीयानां विदुषां वा, प्रियः
भूयासम्, स्याम्, मे, मम,

कामः अयम् इष्टसुखेच्छा इयम् सम्यग्घृतानाम् सम्यक् सद्भूतानाम् वर्धतानाम् उपमादेनम नु मां मामृ अहः इह मिथु खम् उपनयतु समक्ष्व्रा क्षे तु इत्यत्रय तेष्टव्याभिकोल न स्वरूपादहिरणौ तस्याः सद्धा दिस्योदानेकामक्तिः कौबाव मम्रामाण्येतस्या उपयोगः त स्याः सर्वोपयत्नवत्स्फलावह इति पृ० ४३ पं० १५ अपिचवेदा नां सत्ययुगादिवृत्तिलमक्ति नवानो चैद्वेतौवमिचारो वे दे पि साध्याभावत्तिप्रमाणान्त रेतोः स्यात् अक्तिवैस्व तीकरीत्यावेदप्रामाण्यस्वी कारेण्णीतेलत्वाभावात्सत्वप्र

ग दिवृत्तित्वानुमाने स्वरूपासि
द्धो हेतुः तेनापि हेतुना धर्म
प्रामाण्यानुमानात् स प्रतिप
क्षित इति । अपूर्वमन्येन
युगादिर्मी मनात्मिक धर्मेषा
न्कुण्ठो इत्यादि प्रकार भेद भि
न्न वाक्यकलाप घटित वैदि
क धर्मत्वात् अद्यतन धर्म
वदित्युक्तम्, यदा हि युगादौ,
सत्यं, वा मन्त्रस्यैवाभावः त
न्मेव दनाश्रित्य दिहाणाड्
म्ना मुनयो न धर्मे वत्वं कृत
स्यन्तस्य पथ्या लोचने व
भिचारिभिः प्रणीतत्वात्, तथा
च साध्य प्रसिद्धिः न वा कुण्ड
यो न्याघेक देशे न वैदिक धर्म
वत्वं हेतु । स्तस्य बुद्ध तन्त्रा

दि साधारण्यात्, नापि वा मत
न्त्रे वेदप्रामाण्यस्वीकारे स्वीकृ
तत्वाभावो येन स्वरूपासिद्धो
हेतुः स्यात्, किन्तु तत्स्वीकारे
स्वीकृतमेव, एकदेशेन स्वी
कारस्य प्रामाण्याप्रयोजक
त्वात् तस्यास्तिकनास्तिकतन्त्र
साधारण्यात्, नवा तेन सत्प्र
तिपक्षितत्वम्,, पृ० ४४ पं० १५
अथ सर्वकालावच्छिन्नग्राह्य
त्वघेगम्यत्वं सदातनत्वं न्तद
भावश्च हेतुर्यो गम्यत्वं स्वसत्ता
समानकालिकग्राह्यतावच्छे
दक वेदत्वादिमत्वन्तच्च वेद
काले सर्वदेवास्तीति चेन्न, त
द्देववामतन्त्रेपि सत्वेनासिद्ध
त्वात्, किंच सर्वाशावच्छिन्न

ग्राह्यत्वसामान्याभावो हेतुः य
त्किंचिदंशावच्छिन्नग्राह्यत्वाभा
वो निरुक्तग्राह्यतावच्छेदकध
र्मावच्छिन्नप्रतियोगिताक
पर्य्याप्त्यनुयोगितावच्छेदक
रूपवत्तिप्रतियोगिकाभावो वा
रूपवत्तित्वं चत्वावच्छेदकता
त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताक
पर्य्याप्त्यनुयोगितावच्छेदक
त्वं सर्व्वत्रेति अत्र द्रष्टव्यः
को हेतुरयं प्रतारकः स्वतन्त्रः
यदा हि सर्व्वांशावच्छिन्नग्राह्य
त्वसामान्याभावो यत्किंचिद
शावच्छिन्नग्राह्यत्वाभावो वेति वि
कल्पितस्तर्हि किमयं निरुक्त
ग्राह्यतावच्छेदकधर्म्मावच्छि
न्नेत्याद्यपार्थकाभिधानम्:

किंचैतस्य सम्बन्धं पञ्च पञ्चिंशि
दं शाबच्छिन्नग्राहिताभावेन कु
तः आवश्यकश्चैतर्हि लाभान्या
भावेनायं पाठो योऽयः । बहूनि पु
स्तकानि मुद्रितानि गृहीतुं यतस्त
तः पाठान्तरैः सम्बन्धस्तु खलु
ष्टा सम्प्रधार्यकार्यः । कुत्रायं
पाठ उपयुज्यत इति । किंवा न्या
याभिज्ञत्वं स्वस्मिन् योतनायैवा
यं वा पारलैतत्त्व मर्हलन्नमि
हैसुकृतिष्ट लाभोविहस्तुत प
ह सन्नीयरबालम्बङ्कायत्न ? न
हि सर्वत्रावच्छेदकावच्छिन्नत्वं
विहद्भिः प्रयुज्यते यथाहं प्रयुं
हेऽत्र यथा सामाजिकान् पिसुद्ध
च्छपत्रं प्रेषयता नत्राध्वंसमुप
निबध्नताऽन्येपि प्रेक्षावन्तोऽनु

न्निमत्त्वारैपविषयीकृतावेत्ता
धिकरणमुख्यकल्पितत्वात्त
त्त्वाहित्वात्वावच्छिन्नात्वबहि
तोचरत्वसम्बन्धावच्छिन्नप्र
कारतानिरूपितत्वावच्छिन्न
ताहशसंसर्गावच्छिन्नप्रकारता
निरूपितत्वावच्छिन्नताहशा
संसर्गावच्छिन्नप्रकारतानिरू
पितत्वावच्छिन्नताहशसं
सर्गावच्छिन्नप्रकारतानिरूपि
तपदीयवत्तात्त्विकविपर्यय
संबन्धप्रत्येयलक्ष्यार्थग्रहत्वा
वच्छिन्नप्रमाविषयार्थसत्त्वख
निद्पिविषयेशास्त्राभिलान्से
वहि चारोपितुर्व्यथेशास्त्रविषय
कज्ञानजनकत्वेन प्र मा त्वा वगा
हिज्ञानविषयत्वस्यमत्वहि

त्वेतेषामितिकिं अत्रप्रष्टव्योऽयम
र्थः कोभिधायकः। किमाद्योप
दघटकोऽरकारः सर्वत्रमात्रकारणा
मायुरत्वादिपदघटकानामप्य
वाहितोत्तरवर्तियेनात्वावच्छि
न्नेत्यादिषु जातिपर्यन्तंसर्वमा
नुधावति, किंचप्रकारताविशे
ष्यतात्मकविषयतयोर्ज्ञाने श्रु
कृतिभिरेवनिरूपितत्वेनेमा
मेवसविषयकत्वान्तरपदी
येतिपदनिरूपितत्वम्, किंच
रत्वावच्छिन्नाप्रकारताकज्ञान
व्यवहितोत्तरत्वसम्बन्धावच्छि
न्नाख्यातः किन्तुरत्वावच्छिन्ना
विशेष्यतेतिवाच्यम्, एकनि
ष्ठविषयतयोर्भेदाधरभ्रुहा
चाद्येमते ऽचच्छेदावच्छे

महूर्त्तपक्षमासवर्षनिर्वर्त्तनीय
स्यवोधकवेदभागेनास्तिसर्व्व
कालावच्छिन्नग्राह्यत्वम्, ग्राह्य
त्वनिवेशे चायमभिप्रायः कुत्रचि
त्कालीशाङ्कपर्य्यादिकुमाराधर्य्या
दिकौटिपत्रेषु व्याप्तिलक्षणे ग्राह्य
शब्देन साध्यं गृह्यते तथा च सा
ध्याभाववदवृत्तित्वे महानसीय
वह्न्यभावतत्तद्वह्न्यभावमादाया
व्याप्तिवारणाय साध्यतावच्छेद
कतात्वावच्छिन्नप्रतियोगिता
कपर्य्याप्त्यनुयोगितावच्छेदक
पर्याप्तिप्रतियोगिताकाभावो वि
वक्षितः। रूपवृत्तित्वं च स्वाव
च्छेदकतात्वावच्छिन्नप्रतियो
गिताकपर्य्याप्त्यनुयोगितावच्छेदकत्वसंसर्गेण, समन्वय

च्छेत्यम् । साध्यतावच्छेदकंय
द्वह्नित्वन्तदवच्छिन्नप्रतियोगि
ताकपर्य्याप्त्यनुयोगितावच्छे
दकंरूपंवह्नित्वगतमेकत्वंन
तुमहानसीयत्ववह्नित्वगतद्वि
त्वन्तस्यतुमहानसीयत्ववह्नि
त्वोभयधर्मावच्छिन्नप्रतियो
गिताकपर्य्याप्त्यनुयोगितावच्छे
दकत्वान्नतुसाध्यतावच्छेदक
वह्नित्वधर्मावच्छिन्नप्रतियो
गिताकपर्य्याप्त्यनुयोगिताव
च्छेदकमितिनतमादायवह्नि
मान्धूमादित्यत्राव्याप्तिः । अ
नेनचग्राह्यशब्दएतद्ग्रहणायै
वनिवेशितोऽन्यथासद्यातन
त्वस्यत्वत्यन्ताभावप्रतियोगि
तानवच्छेदकधर्मवत्त्वस्यैव

रकभावो जगदीशभट्टाचार्य्यैम
तेच निरूप्यनिरूपकभावः।
तथाचरत्वावच्छिन्नविशेष्य
तावच्छिन्नप्रकारतावाच्या
रत्वावच्छिन्नविशेष्यतानि
रूपितप्रकारतावावाच्या,
किंचार्थ्यत्रवर्णचतुष्टयंकथं
पुनरन्तेवर्णेअत्वावच्छिन्नप्र
कारतानहितदुत्तरवर्त्तिःकाष्ठि
द्रूणोविशेष्योयत्रसप्रकारःस्या
त्, किंचविपर्य्ययसम्बन्धेत्यत्र
लक्षणासम्बन्धोऽस्याभिप्रेतोन
हितावद्विपर्य्ययपदंलक्षणा
वाचकन्तस्यवैपरीत्येरूढत्वात्
यदिशक्तिर्निर्दिष्टाऽपिपूर्वेभव
त्तदापिनशक्तिर्वैपरीत्यमेव
लक्षणाकिंतुशक्यसम्बन्धरू

पापात्तस्याः शक्तिलः पार्थक्यात् तस्मादपदार्थवदन् विद्वांस्तु सहसनीयः सतां शोचनीयो मूर्खाणां श्लाघनीयश्च स्यात् सम्प्रति प्रकृतमनुसरामः । अपर्वकालावच्छिन्नग्राह्यत्वयोग्यत्वं सदातनत्वमिति सदातनत्वपरिष्कृतिः । अत्रप्रष्टव्यश्चास्मत्पूर्वाणां परिष्कारणां सत्त्वे, किं भोः अवच्छिन्नत्वग्राह्यत्वयोग्यत्वानां निवेशे किं प्रयोजनम् अत्यन्ताभावाप्रतियोगित्वमेव सदातनत्वं ग्राह्यत्वनिवेशे किं प्रयोजनं प्रतिनद्धयं नियमोऽयः सदा ः स ग्राह्य एवेति किंच ग्राह्य निवेशे वैदिककर्मणोऽपि

किं चाग्रिम विकल्प दूषण म
प्यसङ्गतम् , तत्र नाद्य इत्यनेन
सर्वांशावच्छेदेन गोमेधीयगवा
लम्भबोधकवेदवाक्यावच्छेदेन
कलिनिषेधक पराशरस्मृतिबले
न ग्राह्यत्वाभावसत्वादसदातनत्व
प्रसक्त्याऽभिप्रायवर्णनमस
ङ्गतम् , कुतो बुद्धिस्त्वया ग्राह्यता
वच्छेदकवेदत्वत्वमनुसृत
न्तत्तादृश वेदत्व जातिमत्वस्य
तादृशवेदवाक्येपि सत्वेन ना
त्रासदातनत्वप्रसक्तेर्नअभि
चारः । अहो कीदृशोयं विस्मर
णशीलोयं लोका धर्मपिना
बधारयति । किं स्वयमुक्तं गवा
लम्भबोधकवेदभागे तादृशग्रा
ह्यतावच्छेदकानतिरीतविधि

कवेदत्वाभावेन व्यभिचारत्ताद
वस्थ्यादिति तदप्यसङ्गतम्, अ
न विगीतेत्यत्र विरुद्धं गीतं वि
गीतं न विगीतमविगीतमविरु
द्धमिति यावत्, न अविगीत
मनविगीतमपुनर्विरुद्धमिति
यावत्, तथा च विरुद्धविधिक
वेदत्वाभावेन व्यभिचारप्रदर्श
नं न घटते पराशरस्मृतिविरुद्ध
विधिकवेदत्वस्यैव तत्र सत्त्वा
त्, किंच पूर्वपरग्रन्थ विरोध
श्च पूर्वं हि पराशरस्मृतिविरु
द्धस्यैव ग्राह्यत्वाभावस्तत्र
स्थापितः अग्रे त्वविगीतविधि
कत्वसमानाधिकरणवेदत्व
स्यैव ग्राह्यतावच्छेदकत्वरूप
योग्यत्वस्य स्वीकरणीयत्वादि

सदातनत्वं गगनादि सदातनप
दार्थेषु शास्त्रकृद्भिः स्वीकृतं क
थंनाभ्युपेतम्, ग्राह्यत्वनिवे
शे च योग्यत्वस्यावश्यकत्वेन
गौरवं च स्यात् अन्यथा गवाल
म्भबोधक वेदभागस्य कलौ नि
षिद्ध विषयस्य कलिकालाव
च्छेदेनाग्राह्यत्वात् तस्या सदा
तनत्वप्रसङ्गः स्यात्, एतच्च त्व
दुक्तरीत्या योग्यत्व निवेशफल
म्, अस्मदुक्तरीत्या चेश्वरादि स
दातनपदार्थे ष्वप्राप्ति वारकत्वा
न्निवेश्यम्, तस्मादप्राप्तिलक्षण
घटकसाध्यपदं परित्यज्यग्रा
ह्यपदं निवेशितार्थः परिष्का
रः कृतः किं वा पाठवैलक्षण्यदृ
ष्टेवतत आह त्यात्रनिवेशितः।

किंच सदातनत्वपरिष्कारे यदु
क्तं सर्वकालावच्छिन्नग्राह्यत्वयो
ग्यत्वं सदातनत्वं तत्रापि योग्यत्वं
च स्वसत्तासमानकालिकग्राह्य
तावच्छेदकवेदत्वादिमत्वम्,
अत्र स्वपदेन सर्वकालावच्छि
न्नं ग्राह्यत्वं ग्राह्यत्तयाचसर्व
कालावच्छिन्नं यद्ग्राह्यत्वन्तत्स
त्तासमानकालिकंयद्ग्राह्यताव
च्छेदकंवेदत्वादितद्वत्वमित्य
र्थः स्यात्, सचासङ्गत एव द्विधा
कालभानात्स्वसत्तासमानका
लिकेतिपदस्यवैयर्थ्यात्, किं
चाग्रिमविकल्पोप्यसङ्गतस्तत्रा
पिसर्वांशावच्छिन्नयोग्यत्वाभा
वो वा, इत्येवं विकल्प्यं न तु सर्वां
शावच्छिन्नग्राह्यत्वाभावादि,

स्तुतं कथं पुनर्मध्येऽन विगीत विधिकवेदत्वं ग्राह्यतावच्छेदकमुच्यते, किंच निषिध्यमान कालावच्छेदेन ग्राह्यत्ववारणाय वेदत्वं विमुच्या विगीत विधिकत्व समानाधिकरणवेदत्वस्यैव ताद्दश ग्राह्यतावच्छेदकयोग्यत्वमुक्तन्तदयुक्तम् नहि निषिध्यमानत्वं कालेसम्भवति, किंतु क्रियायामेव, किंचपूर्वयोग्यत्व निर्वचनतो भिन्नयोग्यत्वनिर्वचने पूर्वापरग्रन्थ विरोधश्चेति, किंच नहि स्मृति विरोधे श्रुतेर्ग्राह्यत्वं किन्तुस्मृतेरेव नन्तर्हि परम्परास्मृतेः कोऽपि प्राय इति चेत् कलयन्तर्गतजनानां प्रायेण वैदि

कलौकिकसामर्थ्याभाववत्वा
ततेषांकर्मणोवाकुल्येनवैगु
ण्यात् व्यर्थपशुबीजादिवधजपा
पमापित्तिमयास्मृतेः प्रणयनात
पन्मन्त्रमूलकत्वेन परापारस्मृ
तेः प्राबल्यमभ्युपगच्छसि प्र
थमतस्तत्र निषेधवाचकपदा
भावान्निषेधप्रकाशकत्वमेव
तस्यानभ्युपगतंस्याच्चेदश्वमेध
गोमेधादियागोत्तरं प्रायश्चित्त
प्रकाशकत्वमेव किंचमन्त्रस्तु
सामान्यतो निषेधकः स्याद्य
त्र स्यादपि ब्राह्मणवाक्यंपुनर
श्वमेधगोमेधादियागेविधाय
कं कथं पुनस्तन्मूलकत्वेन प
रापारस्मृतेर्विरोधेनगबालम्ब
नोधक वेदभागे ग्राह्यत्वाभावः

कलिकालाव च्छेदेन स्थाप्यते,
स्त्र तेरपरः स्थानुरोधानि प्रायेण
प्रणयनात् अत्रस्तु यागोचरं प्रा
माण्यं तानि प्रायेण श्रूयते न
हि विधि विहितस्य निषेधानि
प्रायेण विधिस्य हेनिषेधानव
काशादिति मीमांसक सिद्धा
न्तात्, इति पूर्वमेव त्वदीय प्रु
गल्भवस्याखण्डने साधितमि
त्यनर्गल मेवचः। तस्मात्सर्वो
पात्तविच्छिन्न ग्राह्यत्वसामान्याभा
वस्य प्रथमविकल्पदूषण मस
ङ्गतम् ११ पृ० ४ पं० १२ विगीतत्वं
व्यवस्थापयिक न्यायाधिगत
निखिलकुकालदेशादिमत्वं तत्
कत्वाभावश्चाविगीतत्वमत्र ज्ञे
यमिति चेत् अत्रत्रूमवस्यापिख

ण्डितातदुपयिकन्यायोपि ख
ण्डितः। अत्रगवालम्भबोधक
वेदभागे व्यभिचाराभावास्यच
मपक्षस्यखण्डनस्यत्वत्कृतस्य
खण्डनम्, अथ यत्किंचिदंशा
वच्छिन्नताहृशगवालम्भाभावप
क्षे दोषदानमप्यसङ्गतम्, नह्य
नभिलषितवेदभागः कश्चित्त
थ्याभवद्विधानामल्पज्ञानां भ्र
मविप्रलम्भकत्वादिदोषदूषि
तवक्तॄणां ग्रन्थाः स्वाभ्यपुरु
षप्रारिप्सितत्वसम्बन्धेन विप्र
लम्भकत्वादिदोषविशिष्टास्त
थेश्वरवाक्यमपि तादृशदोषव
त्त्वेनानभिलषितमग्राह्यं वास्या
त्, अन्यथाभवद्वाक्यानिवाप्य
थेकत्वमसम्बद्धत्वञ्चप्रसज्ये

त, नहि कुत्रचिदपि केनचिद
प्यंशेन वैदिकवाक्ये ग्राह्यत्वा
भावो येन प्रमाणत्वसाध्याभा
ववति वेदेतरग्राह्यत्वाभाव
रूपासद्धातनत्वहेतोः सत्वेन व्य
भिचारः स्यात्, अतोऽसङ्गतमे
वोभयत्र दूषणदानं विकल्प
खण्डनायेति॥ पृ०४५ पं०१५।
वज्रसैलिक्रियाद्युमात्रग्राह्यप
ध्या पञ्चमभूतात्मकतात्त्विकप्र
कारस्य च वज्रसैलिक्रियावि
षयप्रमाविरहेण ग्राह्यत्वेपि
तदितरभागावच्छेदेन ग्राह्यत्वा
द्यभावसिद्धेर्निरुक्तरीत्या वेद
स्यैकदेशस्वीकृतवेदकालिके
साधारणधर्मबोधकत्वादि
हेतुभिः सत्प्रतिपक्षितत्वेना

दित्वे अहो अज्ञानमहो समाधानमहो प्रतारकत्वम्, यदि हि तान्त्रिकपञ्चमकारपूजाप्रकारस्य वाममतन्त्रसारभूतस्य मुख्योस्यतन्त्रे वामत्व प्रयोजकस्य प्रमाविरहेणाग्राह्यत्वं तर्हि तन्मुखादेव वाममतन्त्रस्याग्राह्यत्वं सिद्धं समाधुः स्वेच्छाविनायकं प्रकुर्वाणो रचयामास वानरमित्याभाणकमनुसरतः, किं चतदितरभागस्य कथं प्रमात्वं येन तदवच्छेदेन भागासिद्धिं ब्रवीषि नह्येकदेशेन प्रमात्वे ग्राह्यत्वं तस्यैकदेशेनप्रमात्वस्य बुद्धशाक्ययवनादिग्रन्थेषु सर्वत्रैवाविशिष्टत्वात्, तत्रोपवासाहिंसा

देःसत्वात् । किंच योनिलेहन योनिक्षालिततोयतर्पण योनिजिह्वाप्रक्षेपपूर्वकमन्त्रजप स्ववीर्य्यहोमलदूक्षणादीनामपि पञ्चमपूजाप्रकारभिन्नानां कथं ग्राह्यत्वं यथा त्वया पञ्चमपूजाप्रकारोन ग्राह्यत्वेन स्वीकृतस्तथायमपीतरभागो न ग्राह्यः । एकदेशाप्रामाण्येनाग्राह्यत्वे विषयुक्तान्नवत्सर्वमग्राह्यमेवेति न स्वरूपासिद्धिः । किंच वाममतन्त्रं धर्मे प्रमाणं वेदस्वीकर्त्रस्वीकृत वेदकालिकसाधारणधर्मबोधकत्वादित्यनेन सत्प्रतिपक्षितत्वमाह अत्र वेदकालिकेति मध्यविशेषणं त्रुटितत्वेनापि हीनबलं

साधनं साधारणधर्म्मबोधक
त्वमपि पक्षेऽसमतत्वेनासि, प
क्षाहि धर्म्मि प्रमाणत्वं त्वयापिन
सिद्धं कथम्पुनरसिद्धहेतुना
सत्प्रतिपक्षितत्वम्, धर्मे च प्रा
लक्षणस्यानधिकारसाधनात्सा
धारणधर्म्मबोधकत्वहेतोरसि
द्धत्वं, किंच वेदस्वीकर्तृस्वीकृ
तवेदकालिकसाधारणधर्म्म
बोधकत्वहेतुः कथं साध्याभाव
स्य प्रमाणत्वाभावाभावस्य प्र
माणत्वरूपस्य साध्यस्य साध
कः। कथं वा तेन तस्य व्याप्तिः क
थं वा साधारणधर्म्मबोधकत्वा
त्वं वेदस्वीकर्तृभिः स्वीकृतमि
ति, तस्मादपदार्थमसम्बद्धं च
त्वदुक्तं न स्तोकमपि जिह्रेतीति,

किंचवामतन्त्रं धर्मेन प्रमाणं अ
सदातनत्वात् अत्रानेनासदातन
त्वं सर्वकालावच्छिन्नग्राह्यत्व
योग्यत्वमुक्तं तदभावश्च हेतुरु
क्तः सच ग्राह्यत्व योग्यत्वाभाव
एवसिद्धः। कथम्पुनर्हेतुताव
च्छेदककोटि प्रविष्टस्यतस्या
भावं हेतुतावच्छेदकाभावरूपं
हेतुत्वेनस्वीकरोति, नहिकद
चिद्धेतुतावच्छेदकाभावोपि
हेतुरिति व्यवह्रियते, तस्मा
ग्राह्यत्वस्यहेतुतावच्छेदकस्या
भावंहेतुत्वेनस्वीकृत्यसर्वकाला
वच्छिन्नग्राह्यत्वसामान्याभा
वोहेतुः। यत्किंचिद्देशावच्छि
न्नग्राह्यत्वाभावोवेतिवदन् वि
दुषामुपहसनीयः सतांशोचनी

यः। अस्य मुखविकसत्किंचिनि
र्गच्छतिनायमाशेच्चयतिकिं
मेसुखान्निर्गिलितमिति॰ यतो
हेतुतावच्छेदकस्याग्राह्यत्व
स्याभावं हेतुतेनखीकृत्य विक
ल्पयति॰ अथ–स्वरूपावच्छेद
कावच्छिन्नत्व प्रयोज्यत्वंतत्र
न्यायशास्त्रसिद्धत्वं मनुते॰
अतएवानवसरेप्यवच्छेदका
वच्छिन्नत्वं वहुधा प्रवहुः ते
यथा सामाजिकेभ्य. पत्रप्रेष
णे अभावच्छिन्नेत्यादि निर
र्गलमवादीत् तथा आपीतिक
रः कर्यति शास्त्रम १, ५० ४ द
०५। महर्षि तिलिक कल्पित
वादितिवेस्यमिच्छेति हेतुः
महर्षिपरमाशेपलक्षणं वे

स्वरूपासिद्धः। सर्वज्ञप्रणीतत्वं
चेद्वेदत्वेऽप्यसिद्धम्। स्मृ
तिपुराणादिवाक्यानामपि सर्व
ज्ञतान्यथेति यथा कथितत्वे
सत्याप्तप्रणीतत्वस्य ज्ञातत्वादि
ग्रन्थान्तरेऽपि दोषः परीक्षणे त
द्वैतप्रणीतत्वाभ्युपगमात् तैः
परेषामविसंवादित्वेऽपि कारणं
दुःशकमिति निश्च अन्यत्र क्वं
मत्वं धर्मेण प्रमाणं महर्षे
तिरिक्तकल्पितत्वाभिरिक्त
मत्वे हेतुर्वेदे व्यभिचारित इति
तदस्याज्ञानविजृम्भितम्। न
हि वेदे महर्षेतिरिक्तकल्पि
तत्वं मीमांसकमतेन मीमांस
के हि वेदस्य स्वरूपानपेक्ष
वदेवानादित्वस्वीकारात्॥

नैयायिकैश्चेश्वरप्रणीततत्त्व
स्वीकारात्तदपि बाध्यगन्धादि
त्यरूपर्षिद्वारैव, तस्मादुभ
यथापि महर्ष्यतिरिक्तकल्पि
ततत्त्वं वेदे नास्ति कथं तत्र व्य-
भिचारः स्यात्, किंच मह-
र्षिपदस्याप्तोपलक्षणत्वेक
थं स्वरूपासिद्धिः। आप्तत्वंच
यथार्थवक्तृत्वं नतदतिरिक्ता
नाप्तकल्पिततत्त्वस्य वाम त
न्त्रे सत्वात्, तस्य च व्यभिचा
रि धूर्त्तकल्पिततत्त्वस्वीकारा
त्, यदिच तत्र शिवप्रणीतत्वं
स्वीक्रियते, तदापि तस्य शिव
स्याप्यानाप्तत्वे नाप्तातिरिक्त
कल्पिततत्त्वस्य सत्वान्न स्वरूपा
सिद्धत्वम्, यथा जलन्धरव

धेवन्दाच्छलने समुद्रमथने-
चासुरच्छलने विष्णोः कार्यो
थिमयथार्थत्वं च्छलेनाना मृतं
पथावादिल छलने बुद्धरूपेण
नामृतत्वन्तेन च विष्णुना मेरुत
ल्कै वाममार्गीये, ॥ ३ बाणमधु
रं विष्णुः सान्त्वयंश्च प्रतारयन्
पूर्वे वासस्तु यूयमधस्यास्य
न्वयानन्तः ॥४३॥ अत्रैव यदिदमु
पनंदीयूवन्तसुकीर्तितम्:
अग्रेयेतत्तु देवार्थे निस्सारंप
रुषाहृतम् ४८ इत्येवं छलन
मनुष्ठितम्, यथा विष्णुना छ
लेन दैत्येभ्यं ग्राहितन्तथा
शिवेनापि तन्त्रच्छलेन स्वरादै
त्य कुलेस्थापिता न केवलं-
सुरैव अपितु योनिलेहनं-

योनिक्षालिततोयतर्पकं यो-
निमुखप्रक्षेपपूर्वकमन्त्रज
पादिपूर्वकं जातिपातत्यजन
कं सर्वतैर्योहितत्वतः प्रभृत्ये
वाशिष्टैर्नगृहीतमिदंमतम्॥
अतएव विष्ण्वादयोपि शिवंछ
लनकर्मणि प्रशाधंस्तुरिति॥त
स्मादप्रातिरिक्तत्वहेतोरुभय
थाधिसत्वान्मस्वरूपासिद्धि
रितिभावः। अनेनतुल्यबास
नाप्राबल्येनाःमिहितमनुमा
नाकौशलेनवा॥ सर्वज्ञप्रणीत
त्वंचेन्महर्षीतिरिक्तकल्पित
त्वन्तर्हेदवन्तेष्वसिद्धमिति
वत्तिस्थवीयः। यच्चयंपाठःसङ्ग
तार्थ इतिकश्चिद्ब्रूयात्तत्प्रति
जाने शास्त्रं नस्पृशेयमिति॥

पदुकं स्मृतिषु व्यभिचारवार
णाय सर्वज्ञतायाश्च विषयाबा
धितत्वे सत्याप्तप्रणीतत्वस्ये
ति तदत्यन्तमनन्वितम्, कि
म्भोः अत्र विशेषणस्य वैयर्थ्ये
कथं वार्यते आप्तप्रणीतस्ये
व वाक्यस्य प्रमाणत्वं तच्च सर्व
ज्ञप्रणीतमल्पज्ञप्रणीतं वा
अन्यथा लौकिकवाक्येषु स
र्वज्ञप्रणीतत्वाभावात्प्रमाण
त्वं न स्यात्, इष्टापत्तौ सर्वत्रा
नाश्वासप्रसङ्गेन सार्वजनी
नव्यवहारलोपस्स्यात्, किं
चाबाधितसर्वज्ञतास्य्येवि
षयत्वे सतीत्यबाधितत्वम
पितास्यर्थे विशेषणीयं वैय
र्थ्यं नु तथाप्यस्ये वेति दिक्

योनिक्षालित तोयतर्पणं यो-
नि मुखप्रक्षेप पूर्वक मन्त्रज
पादि पूर्वकं अलि पात्र अन्न
कं सर्वं ते योहित न्त्वतः प्रभृत्ये
व शिष्टै र्नेग्रहीत मिदं मतम्॥
अतएव विष्ण्वादयो पि शिवं कु
लनक र्मभि प्रशधं सुरिति॥ त
स्मादशास्त्र रिक्तत्व हेतोरु भय
थापि सत्ता न्स्वरूपा सिद्धि
रिति भावः। अनेन तु स्वबास
नाप्रावल्येन। मिहित मनु मा
ना कौशलेन बा॥ सर्वज्ञ प्रणीत
त्वं चेन्न हर्यति रिक्त कल्पित
त्वन्तहेद वन्न त्रे च्च लिङ्ग मिति
स्वतिस्थ वीयः। य च्चंपाठः सङ्ग
तार्थ इति कश्चि द्भूयात्तद् प्रति
जाने शास्त्रं न स्पृशेय मिति॥

यदुक्तं स्मृतिषु व्यभिचारवार
णाय सर्वज्ञतात्पर्यविषयाबा
धितत्वे सत्याप्तप्रणीतत्वस्ये
ति तदत्यन्तमनन्वितम्, कि
म्बोः। अत्र विशेषणस्य वैयर्थ्ये
कथं वार्य्यते आप्तप्रणीतस्ये
व वाक्यस्य प्रमाणत्वं तच्च सर्व
ज्ञप्रणीतमल्पज्ञप्रणीतं वा
अन्यथा लौकिकवाक्येषु स
र्वज्ञप्रणीतत्वाभावात्प्रमाण
त्वं न स्यात्, इष्टापत्तौ सर्वज्ञा
नाश्वासप्रसङ्गेन हा वैजमी
न व्यवहारलोपस्स्यात्, किं
चाबाधितसर्वज्ञतात्पर्यवि
षयत्वे सतीत्यबाधितत्वम
पि तात्पर्यविशेषणीयं वैय
र्थ्यं तु तथाप्यस्त्येवेति दिक्

यद्योक्तं सर्वज्ञप्रणीतत्वाभ्युप
गन्तॄणां परेषामपि तदसि
द्धिवारणं दुःशकमिति, तदप्य
त्यसमञ्जसम्, महर्ष्यतिरि
क्तकल्पितत्वस्य सर्वज्ञप्रणी
तत्वार्थकत्वाभावात्, नहि
महर्ष्यतिरिक्ताः सर्वज्ञा भवि
तुमर्हन्ति महर्षिपदस्य सर्व
ज्ञार्थकत्वं भवेदपि सर्वज्ञप्र
णीतार्थकत्वन्त्वतिविरुद्धम्
किंच परमते बुद्धशाक्यग्रन्थे
षु सर्वज्ञप्रणीतत्वाभ्युपगमे
कथमसिद्धिः। महर्ष्यतिरि
क्तकल्पितत्वात्तस्य सर्वस्य
हेतोः सर्वज्ञप्रणीतार्थक
त्वात्तस्य च परमतेनतत्र स
त्वात्, अस्ति चेदप्रातिरिक्त

प्रणीतार्थकत्वे नैव वरैर्बुद्ध
शाक्यादीनामाप्तत्वस्वीकारा
त्, तस्मात्सर्वमपार्थकमि
दध्यासिलरसिद्धिकारणं दुः
शकमिति, पृ० ४६ पं० ११ प्रस्तु
तानकारीस्य प्रथमश्लोके वे
दः धर्मे सन्दिग्धप्रमाणका
सन्दिग्धकर्तृकत्वादित्या
भासमात्रमिति ॥ अत्र स
न्दिग्धप्रमाणकत्वादितिहे
तौ सन्दिग्धप्रमाणकत्व
सिद्धानां व्याकरणात्स्वानव
बोधत्वमस्य वदन्ति, किं
चार्वाकलक्षणोतेवेदैश्च स्व
कर्तृकत्वेऽपि सन्दिग्धे, न
पुनर्वैमत्ये तत्त्वोपस्कर
दिकस्तं किं सिद्धिमेति ऽहो

अस्य संस्कार प्राबल्यं येने
दृशो व्यामोहः सम्वृत्तः। पृ०
४६ पं० २३। निःश्वसितोवेद
इतिवच्च शिव सर्वज्ञेश्वरपै
रव प्रणीतत्त्व हेतुनातुल्यं प्रा
माण्य साधनं सत्प्रतिपक्ष मे
तिक्व अहो सर्वशास्त्र संस्कार
शून्यत्वव्यञ्जकाभिधान मस्य
नहि सर्वज्ञ प्रणीत वाक्यस्यैव
प्रामाण्यमिति नियमः। अन्य
थाऽस्मज्ञानामस्मदादीनामा
प्तानां प्रणीत वाक्यस्याप्रामाण्य
प्रसङ्गे न सर्वेषा नाश्वासेन व्यव
हारलोपस्स्यात्, किंच सर्वज्ञा
नामपि विष्ण्वादीनां कार्यार्थं
कुत्रचिदनाप्तानां वाक्यस्य प्रा
माण्य प्रसङ्गस्स्यात्, यथादेवे

ष्यत्ति विघ्नप्रदानार्थं बलि छल
ने, जलन्धर वधार्थं वृन्दाछल
ने च मोहनीरूपेण च दैत्यच्छ
लने यागोच्छेदकारेण दैत्येषु
निर्बलतापादनार्थं बुद्धरूपे
ण दैत्यच्छलने चानाप्तस्य वि
ष्णोर्नास्ति वाक्यस्य प्रामाण्य
म, किन्त्वाप्तोक्तस्यैव शब्दस्य
प्रमाणत्वम्, एवमेव गैरवा
दिरूपेण शिवस्याप्यनाप्तत्वे
न कार्यार्थं स्वोक्तेन वामकौ
लमार्गादि विधायक वाक्या
नां नास्ति प्रामाण्यम्, आप्तो
क्तत्वाभावात्, आप्तत्वं च य
थार्थवक्तृत्वं तच्च सर्वेत्रास्य
त्रयोः समानम्, अनाप्तत्वं चा
यथार्थवक्तृत्वं तदप्युभयोः समा

नत्र तस्मात्सर्वेष्वेव प्रणी
तत्वहेतुनाऽतुल्यं प्रामाण्य
साधनं सम्भवति पक्षस्यैतिवा
क्यं सिद्धान्तानुपातितम्, इत्थ
यत्तत्र केनोपमेयः। पृ० ७२
पं० ३। निरर्थकाद्यसम्बन्धघटि
तत्वादिति हि अथ यत्तु न केना
प्य प्रामाण्यसाधने हेतुस्तेना
भिमतः। प्रत्येकवर्णस्यार्थ
त्वात्, न कोऽपि वर्णस्याद्यर्थो
वा न स्यादिति स्वयमेवासङ्ग
तमभिधायन निरासे तु पदस्यै
वार्थ, न हि वासनत्वं धर्मेण
प्रमाणं वन्ध्यापुत्र प्रणीतस्या
दिस्यत्र हेतुरूपेण वासनत्वस्य
प्रामाण्यमापाति, तस्मादर्थ
मेववा प्रत्युतं प्रसारितमिति,

यदुक्तं मन्त्रायुर्वेदवत्प्रामाण्य
मिति तन्न फलमात्रस्य शाब्दक्लृ
प्तिः प्रामाण्यप्रयोजकत्वास्वी
कारात्, अन्यथा मारणगमन
क्रियातो विपुलफलस्य नि
ष्पन्नत्वेन स्यादिवाभिमिन्न
ये प्रमाणं स्यात् न वा मन्त्रान्व
यं दूषयामः किन्तु काममार्गी
यविधिनातैरनुष्ठानमात्रमेव
अस्तु कविधाना प्रोक्तेनेतम
न्त्रा अननुष्ठेयकर्मणा प्रतिकू
लप्रवर्तितेन ॥ पृ० ५० पं० १ अहं
मेरस्य इति भावनोपदेशत्वेनस्वा
तिरिक्तदेवतानिषेधकत्वादि
ति चतुर्दशो हेतुः । तादृशभाव
नाविशिष्टपुरुषप्रणीतत्वादि
ति पञ्चदशो हेतुश्चनाप्रामा

ण्यसाधकावेतौ तयोः सर्वोऽस्ति
कातन्त्रसिद्धत्वात्, देवो भूत्वा
देवान् यजेतेति श्रुतेः। अभेदभा
वनयैव यतितव्यमिति श्रुतेश्च
सोऽहमिति देवतामयमात्मानं
विभावयेत्, तस्मादुभयं प्रदर्शि
तन्निरासोक्ते ह्यवयवनान् विह
यन सार्थकं तु धैवगन्धमयत्व
प्रयोजकत्वनिरसनम् यतते
पृ० ५१ पं० १५। एतेनाग्निमहेतुर
पि स्वरूपासिद्ध एव वेदास्वीक
र्ते प्रतिभाविषयत्वं चोपाधिरि
ति, ❀ यदा त्वहं भैरव इति भाव
नाविशिष्टपुरुषप्रणीतत्वादि
त्यस्य हेतुत्वमेव न स्वीकृतं क्व
पुनः स्वरूपासिद्धिरुपाधिश्चे
ति, पृ० ५२ पं० २। तत्र शिष्टप्रणी

तं शिष्टगृहीतत्वादिति क्वाम
तन्त्रस्वरूपमनुपयुक्तं तन्त्र
मात्रमप्यङ्गीकरोषि तथा च वा
मतन्त्रं न शिष्टप्रणीतं शिष्टाग्र
हीतत्वादित्यनेन प्रत्यवस्थानं
तस्मात्सत्प्रतिपक्षितत्वान्न स
द्धेतुरिति ॥ पृ० ५२ पं० ४। सुरा
मांसादेर्भक्षणादेर्विधायकत्वा
दिति योऽयं हेतौ व्यभिचार वि
धायकत्वं रेतो भक्षणादेर्विधा
यकत्वं च न प्रमाणसिद्धमिति,
अव्यभिचारादि विधायक
त्वं रेतो भक्षणादेर्विधायक
त्वं च वाममार्गानुसारितन्त्र
ग्रन्थैरस्माभिः साधितत्वान्ना
त्र पुनरपेक्षा, तदिदं प्रमाणसि
द्धमनेनापह्नूयते परन्तु वामम

र्गि त प्रमाणेन (वेदस्य मध्ये गालंवी
रं कृत्वा परस्यामिसाधकम्) इत्या
दिना (योनि लिङ्गास्थैरपि) इत्या
दिना च किं च यदा स्वधारैलो हिमो
ऽज्ञा वया हि मतुल्य त्वमिलमिदध
तालोहतः कथं न तच्छिद्र स्मस
णं त्वतः प्राप्तम् , स्तुतिस्तति प्रमा
पासिद्धं नेतिरुली कुर्म्मः। अतस्त
प्रमाद
व त्वया पठ्यते तस्याग्राह्यत्वस
मिति निरस्तोयमहाप्रयासः प्रमा
णसिद्धमिति वदसि ०१ पृ० ५२ पं
०। लोयापरलोभ पुंस्त्री पुरुषमि
थुन सम्पर्क के लिये तरस का यह
नादिरस परलोभ ने लिङ्ग अत्र यं
म कारण पूजने स्त्री पदस्य लोयाप
रलोपादाभिधेयादि सामान्यतः स्त्रीप
दं स्यात् तत्र तु चायण्डालीचर्मकारी

चेत्यादीनां मेरुतन्त्रे ग्रहणमस्ति किं च पुरुषस्त्रीजातीययुगलपुष्प सम्बन्धात्कल्पितरक्तचन्दनरसपरत्वं यद्देत, आचमनस्थाने नोक्तं तत्प्रतिनिधिविधानं मुख्याभावे युज्येत अत एव कल्पितरक्तचन्दने युक्तम् नहि स्त्रीप्रदोषाभावे स्त्री सत्वे च प्रतिनिधिकरणं स्यात्॥

पृ॰ ५२ पं॰ १३। भगपूजाप्रकारस्य लिखितयन्त्रामिप्रायकत्वादिति। अत्रानेन भगाकृतियन्त्रपूजनेन स्त्रीयोनिपूजनमपकृष्यते यद्यियन्त्रपूजनमभिमतं नहि तत्स्त्रीं सुन्दरीं रम्यां स्वच्छां कामगर्वितामर॰ समानीय प्रयत्नेन संशोध्य न्यासयोग

र्गे प्रमाणेन (वेदस्याप्रामाण्यं
दुःखप्रदायकत्वं पापस्याप्रसाधकम्) इत्या
दिना (योनिलिङ्गाभ्यामैरपि) इत्य
दिनापि किंच यदा स्वमाता तोडरमो
ऽनावपाहि मतुल्यत्वमिति विदध
ता स्वीकृतः कथं नतच्छिद्र पमस्
तं स्वतः प्राप्नम्, स्मृतिरप्ति प्रमा
णासिद्धं ने तिरुद्धी कुर्मीः। अतएव
प्रमाद
वल्लभा पहर्षते तस्य ग्राह्यत्व स्व
सिद्धि निरूपणीयत्वाभयान्न प्रमा
णासिद्धमिति वदसि॰ पृ॰ ५ पं॰
७। स्त्रीयापरत्वेन पुंसौ कुक्षमि
थुन सम्पर्क के लिए तरकाचन्द
नादिरस परत्वेने तिधाय इत्यनुबंध
मकारपूजने ही पदस्य स्त्रीयाप
रत्वं तदा भवेद्यदि सामान्यतः स्त्रीप
दं स्यात्तत्तु चापकालीच मंकारी

चे त्यादी नां भेरुतन्त्रे ग्रहणमस्ति किं च पुरुषस्त्रीजातीययुगल पुष्प सम्बन्धात्कल्पितरक्तच न्दनरसपरत्वं यद्देत, आचम नस्थाने नो क्तं तत्प्रतिनिधिवि धानं मुख्याभावे युज्येत अत एव कल्पितरक्तचन्दनेस्तु क्तम् नहि तत्र दोषाभावे स्त्री सत्वे च प्रतिनिधिकरणं स्यात्॥१

पृ० ५२ पं० २३। भगपूजाप्रकार स्य लिखितयन्त्राभिप्राय केन दितिचेत् अत्रा नेन भगाकृतिय न्त्र पूजनेन स्त्रीयोनिपूजनम पाकृत्यते यदि यन्त्र पूजनमभि मतं नहि तत्स्त्रीं सुन्दरीं रम्यां च च ञ्चलां कामगर्वितां स० समानी य प्रयत्नेन संशोध्य न्यासयोग

तः।२८ प्रसूनमध्वं संस्थाप्य पृथिवी कल्पितां चरेत्. मूलचक्रं संभाव्य देव्या अक्षारणासंस्कृतमुत्सृज्य। त्तरशक्ते योनिमध्ये मन्त्रप्रयत्नतः संयोगे ३ पञ्जपतव्यं सर्वविद्याधिपो भवेत्॥ ३१॥ इत्यादि किमर्थं स्यात्, तस्मात् स्त्री योनिपूजनमेव भगपूजनं वाममार्गे प्रसिद्धम्, इदमेव च वामस्य वामत्वमन्यथा सुराप्रार्दस्य त्यया सोमरसपरत्वमुपवर्णितं भगवा‌‍न्दस्य च यज्ञपरत्वं तर्हि वामत्वं कथं स्यात्,, पृ० ५२ पं०१५। अश्वमेधीयसमाना न्हैतिक अत्रयदुत्तरं न्तस्मागेवदत्तम्‌ दृष्टान्तदार्ष्टान्तिकयोर्भगाश्वलिङ्गयोर्वैषम्यञ्चेति भावः।

पृ०५८पं०१५। सुराघटित हेतोः
सुराशब्दस्य वेदे, हविर्भिरेके
इति मन्त्रैः सवननिष्पादित
सोमरसादौ प्रसिद्धत्वं स्फुटं गौ
णं मद्यार्थकत्वादीति चोक्तं
प्राक् स्फुटं च षुञ् धातोः सुरा
सन्धानार्थकत्वं तस्मिन्मन्त्रे च
सुन्वन्ति सोममिति तत्फलं च
शचीभिर्मदन्त इति मादकत्वं च प्र
सिद्धमिति ॥ अहो कीदृशो
ऽयं निर्गलाभिप्रायकः स्वत
न्त्रः । यत शचीभिर्मदन्त इति म
न्त्रवाक्यस्य मादकत्वफलार्थ
कत्वं वदति, मन्त्रस्य, हविर्भि
रेके स्वरितः सचन्ते सुन्वन्त
एके सवनेषु सोमान् शची
भिर्मदन्त्युत दक्षिणाभिर्नेज्जि

लायन्त्यो नरकं पतामेति। या
स्कमुनिश्चास्यायमर्थोमाहुः न
रकः न्यरकं नीचैर्गमनं ना
स्मिन्त्रमणं स्याने मल्पमप्य
स्तीति वाऽथापि नचेत्येष इति
त्येतेन संप्रयुज्यतेऽनुपूर्वः। नचै
स्तुरं पिबन्ती ति सुरासुनोते रेवमु
चावचेष्वर्थेषु निपतन्ति तउपे
क्षितव्याः।१२।६।। श्रीनारदेन कि
लभक्तेन प्रति विप्रलभ्यमाना
असुरपत्न्यस्तमनेन प्रत्यूचुः। ए
के जनास्तावत् इतोलोकात् हवि
र्भिः पुरोडाशादिभिः स्वः स्वर्गं सच
न्ते सेवन्ते यान्तीत्यर्थः। अन्येस
वमेषु यज्ञेषु सोमलतासुन्वन्तो
ऽभिषुण्वन्तः। तेनस्वः सचन्ते,
परेशाचीभिर्दन्तः। शच्या वाचादे

वान् हर्षयन्तः। उताऽपि अन्ये द
क्षिणाभिः स्वःसचन्ते, व यमन्या
न्यकर्मानधिकारेण पतिपरिच
र्ययैव ग्रास्यामः। इति पूर्तिः। नेत्
अहो परिविभीमः। एते वांस्तु पती
नां जिह्लं (कौटिल्यम्) आचर
न्तो नरकं पताम। ऽऽधस्ताद्याम:
स्त्रीणां हि पतिसेवैव परमो धर्म
इत्याशयः। अथ निरुक्तस्य पदवि
वरणम्। न्यरकं नीचैरस्मिन्नयि
ते गम्यते, नरमणं न रकं रमकं र
तिकरं स्थानमत्रास्ति, पूर्वत्र इ
लोपः उत्तरत्र मलोपः पृषोदरादि
त्वात्, कश्चित् स्त्वतिरिष्ठन्ति व
ल्लाः। परः प्रत्याचष्टे, तिष्ठन्तीति,
प्रष्टा पद्ति तिष्ठन्ति कुतो नायान्ती
त्युक्ते। परः पुनराह न चेत्सुरं पि

वन्ति तर्ह्योपास्यन्तीति, सुन्ते: ते:
रक्तु प्रत्यये, अभिषूयन्ते उपस
न्धीयते ऽनेकेद्भ्योरिति सुता। ए
वं, उक्तप्रकारेण उपेक्षितव्या, उ
पगम्य गृहं, अधीत्य लक्षण (शा
स्त्र) शास्त्रं तदनु ईक्षितव्याः परी
क्ष्याः शब्दाः कः कस्यार्थ इति, ब्रू
कथमत्रमादकत्वं फलं प्राप्ते प्रश्नु
तमदनेति पदेन हर्षजनकत्वं ग
ह्यते शचीपदं वा गवा वक्तव्या दे
वान् हर्षयन्तः। हर्षजनयन्ती यद्वि
किंचन चेत् सुरां पिबन्तीत्यनेन सुरा
निषेधः प्रस्तुतप्राप्तः। सुरा मागधू
र्तकपक्षप्रवेशाभिधानात्, अत्रेद
मुक्तमनुभाव वेषवर्थेश्च शब्दाः पत
न्ति यथा सुराशब्द उत्तमं सोमरसं
अधमं मद्यं च बोधयति, अतो गु

रुसमीचीनत्वाप्रामाण्यार्थं ज्ञानं समभ्या
दधेत॥ अयमेतन्न जानात्यनेन
वैपरीत्यं सेत्स्यति॥ पृ॰ ५९ पं॰ ६।
सोमरसस्तु तौतस्वरूपवर्णनमि
ति॥ न ह्यत्र मन्त्रे मधस्वरूपवर्ण
नं मधस्य स्वादुमधुररसत्वाभावा
त्॥ पृ॰ ५९ पं॰ १२ अशुचिद्रव्यसंप
र्कि क्रियाविधिरूपत्वादिति सद्वद
शोहेतुरिति॥ स्वरूपासिद्धो हेतुरि
ति पं॰ १८॥ अत्र नहि केवलं पाप
जनकतावच्छेदकधर्मः स्वाभावि
कः पुरीषत्वादिरेवाशुचित्वम्॥
पुरीषादेः शारीरान्तःसंसर्गस्यस
दैवसत्वात्पुरुषस्यपापित्वापत्तेः
अपितु वेदनिषिद्धत्वमेवाशुचि
त्वं वेदविहितत्वमेव च शुचित्वंपु
ण्यजनकतावच्छेदको धर्मः। अ

नाप्रोक्तवामवाक्यविहितेमद्येक
त्वं पुण्यजनकत्वं वामतन्त्रस्यानु
भवत्वस्वीकारेणस्मृतिभिन्नत्वं
साधितमेव, पृ०६० पं०५, तन्त्रे धर्मे
प्रमाणं स्वाभाविकौ बाधिकान्यत
र पुण्यजनकतावच्छेदकंधर्मवत्
द्रव्यघटितत्वादित्येवं सत्प्रतिपक्ष
श्चेति ॥ अत्र हेत्वसिद्धिर्नहीन
बलत्वान्न सत्प्रतिपक्षत्वं हेत्वसि
द्धिश्चानुपदमुक्ता अग्निमन्त्रमा
त्रसाधनं वामेवानुपयुक्तमिति
यस्य विज्ञानमात्रेण सर्वानर्थनि
वर्हणं । तं सेवे गणपं देवं गौरीनन्द
नमर्चिदम्. १ रामनगाङ्क भूवर्षे ग्र
न्थोयं वाडवानलः । जम्बूश्रीनारसिं
हस्य समाप्तिमापसद्यनिर इति
श्री विश्वेश्वराश्रम प्रणीतो लहरीवा
डवानलः समाप्तः